आधुनिक हिन्दी कविता–1

Paper Code – 20HND21C1

दूरस्थ शिक्षा निदेशालय
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय
रोहतक–124 001

Printed at: MDU Press

Copyright © 2020, Maharshi Dayanand University, ROHTAK

All Rights Reserved. No part of this publication may be reproduced or stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means; electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the written permission of the copyright holder.

Maharshi Dayanand University
ROHTAK – 124 001

विषय–सूची

विषय–सूची			1–2
इकाई	17	कुरूक्षेत्र – पष्ठ सर्ग	3–34
	17.0	परिचय	
	17.1	इकाई के उद्देश्य	
	17.2	व्याख्यात अंश	
	17.3	सारांश	
	17.4	मुख्य शब्दावली	
	17.5	'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर	
	17.6	अभ्यास हेतु प्रश्न	
	17.7	आप ये भी पढ़ सकते हैं।	
इकाई	18	उत्तर छायावादी काव्य और दिनकर	35–45
	18.0	परिचय	
	18.1	इकाई के उद्देश्य	
	18.2	दिनकर की जीवनी एवं रचना–संसार	
	18.3	दिनकर के काव्य की प्रवृत्तियां	
	18.4	सारांश	
	18.5	मुख्य शब्दावली	
	18.6	'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर	
	18.7	अभ्यास हेतु प्रश्न	
	18.8	आप ये भी पढ़ सकते हैं।	
इकाई	19	दिनकर का काव्य–शिल्प	46–58
	19.0	परिचय	
	19.1	इकाई के उद्देश्य	
	19.2	दिनकर–काव्य : भाव पक्ष	
	19.3	दिनकर–काव्य : अभिव्यंजना पक्ष	
	19.4	सारांश	

	19.5	मुख्य शब्दावली	
	19.6	अपनी प्रगति जांचिए के उत्तर	
	19.7	अभ्यास हेतु प्रश्न	
	19.8	आप ये भी पढ़ सकते हैं।	
इकाई	20	दिनकर की जीवन–दृष्टि	59–68
	20.0	परिचय	
	20.1	इकाई के उद्देश्य	
	20.2	जीवन–दृष्टि	
	20.3	सारांश	
	20.4	मुख्य शब्दावली	
	20.5	'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर	
	20.6	अभ्यास हेतु प्रश्न	
	20.7	आप ये भी पढ़ सकते हैं।	
इकाई	21	कुरुक्षेत्र के पृष्ठ सर्ग का प्रतिपाद्य	69–76
	21.0	परिचय	
	21.1	इकाई के उद्देश्य	
	21.2	षृष्ठ सर्ग का प्रतिपाद्य	
	21.3	सारांश	
	21.4	मुख्य शब्दावली	
	21.5	'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर	
	21.6	अभ्यास हेतु प्रश्न	
	21.7	आप ये भी पढ़ सकते हैं।	

इकाई 17 कुरूक्षेत्र – पष्ठ सर्ग

इकाई की रूपरेखा

17.0 परिचय

17.1 इकाई के उद्देश्य

17.2 व्याख्यात अंश

17.3 सारांश

17.4 मुख्य शब्दावली

17.5 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर

17.6 अभ्यास हेतु प्रश्न

17.7 आप ये भी पढ़ सकते हैं।

17.0 परिचय

'कुरुक्षेत्र' भारतीय संस्कृति के चितेरे, मानवतावादी राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर की प्रबन्धात्मक काव्य–कृति है। उन्होंने अपने युग की विकट परिस्थितियों पर गंभीरतापूर्वक मनन किया है। उनका विचार है कि विज्ञान की सहायता से मनुष्य ने चाहे आकाश में पक्षी की तरह उड़ना और पानी में मछली की तरह तैरना सीख लिया है, किन्तु उसे धरती पर इंसान की तरह रहना नहीं आया। द्विधा–ग्रस्त लोगों की विचारधाराओं का पारस्परिक टकराव, ईर्ष्या, द्वेष, युद्ध की विभीषिका आदि भयंकर समस्याएँ समस्त विश्व के सामने मुँह बाए खड़ी हैं। दिनकर जी का विचार है कि इन विश्वव्यापी समस्याओं का समाधान करके ही मानव–जाति लोक–कल्याण का स्वप्न संजो सकती है। यह सब न्याय, शांति, सहअस्तित्व और पारस्परिक सद्भाव को सहेजने पर ही संभव हैं। 'कुरुक्षेत्र' का प्रतिपाद्य यही है कि मनुष्य क्षुद्र स्वार्थों को छोड़कर, बुद्धि और हृदय में समन्वय स्थापित करे तथा प्राणपण से मानवता के उत्थान में जुट जाए।

17.1 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप समझ सकेंगे –

- दिनकर जी ने कर्म के महत्त्व को कैसे प्रभावात्मक ढंग से प्रतिपादित किया है।
- युद्ध निंदित एवं क्रूर कर्म है, परन्तु उसका दायित्व किस पर होना चाहिए।
- अधिकार मांगने से नहीं मिलते बल्कि छीने जाते हैं।
- युद्ध एक विध्वंसकारी समस्या है, जिससे त्राण पाने के लिए क्षमा, दया, तप, त्याग आदि मानवीय मूल्यों को अपनाना पड़ेगा।

17.2 व्याख्यात अंश

धर्म का दीपक, दया का दीप,

कब जलेगा, कब जलेगा, विश्व में भगवान?

कब सुकोमल ज्योति से अभिसिक्त

हो, सरस होंगे जली–सूखी रसा के प्राण?

शब्दार्थ – दीपक = दीप, दीवा, विश्व = संसार दुनिया सुकोमल = सुन्दर और कोमल, ज्योति = प्रकाश, रोशनी, अभिसिक्त = सिंचित, रसा = धरती, सरस = प्रसन्न, रसयुक्त।

प्रसंग – प्रस्तुत पंक्तियां राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर द्वारा रचित प्रबन्धकाव्य 'कुरुक्षेत्र' के छठे सर्ग से ली गई हैं। इस सर्ग में समसामयिक परिवेश की भयावह स्थितियों का आकलन किया गया है। चहुंदिश व्याप्त विषाक्त वातावरण से कवि व्यग्र है। वैर, द्वेष, विषमता, स्वार्थपरता आदि मानवता विरोधी भावनाओं से आकुल–व्याकुल कवि भगवान से पूछता है कि हे भगवान इस धरती के दिन कब फिरेंगे।

व्याख्या – कवि ईश्वर से पूछता है कि हे ईश्वर इस धर्म एवं दया–विहीन संसार में धर्म तथा दया का दीपक कब जलेगा। लोगों के ह्रदय में धर्म और दया के भाव कब जागृत होंगे। छल–कपट, वैर–द्वेष आदि से संत्रस्त इस धरती पर प्रेम एवं सद्भाव के पुष्प कब खिलेंगे। दुर्भावनाओं की आग में जली, इस बंजर भूमि में पारस्परिक सौहार्द की कोमल कलियां कब खिलेंगी।

विशेष –

1. यहां कवि विश्व में मानवता के ह्रास से व्यथित एवं चिंतित प्रतीत होता है।
2. कवि की कामना है कि मानवता विरोधी सभी दुर्वभावनाओं का अन्त हो जाए तथा इस धरती पर चहुंदिश खुशियों का चमन खिल उठे।
3. भाषा सरल, तरल एवं भावानुकूल है।
4. अनुप्रास, रूपक, मानवीकरण एवं प्रश्न अलंकारों की छटा।

है बहुत बरसी धरित्री पर अमृत की धार,

पर नहीं अब तक सुशीतल हो सका संसार।

भोग–लिप्सा आज भी लहरा रही उद्दाम,

बह रही असहाय नर की भावना निष्काम।

शब्दार्थ – धरित्री = धरती, अमृत की धार = मीठी वाणी, उपदेश, सुशीतल = शांत एवं प्रसन्न, भोग–लिप्सा = भोग–विलास की लालसा, उद्दाम = तीव्र, प्रबल, असहाय = निर्बल, नर = मनुष्य, निष्काम = कामना रहित।

प्रसंग – प्रस्तुत पद्यांश सुप्रसिद्ध कवि रामधारी सिंह दिनकर द्वारा रचित प्रबन्धकाव्य 'कुरुक्षेत्र' के षष्ठ सर्ग से उद्धृत है। इस सर्ग में दुर्भावनाओं से संत्रस्त मानव–जाति की दयानीय दशा का सांगोपांग चित्रण किया गया है। कवि कहता हैं कि यद्यपि साधु–सन्त अपनी अमृत वाणी से निरन्तर शांति का

उपदेश देते रहे हैं, फिर भी भोग–विलास में डूबे लोगों पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ रहा। साधु–सन्तों के मधुर प्रवचन निष्फल सिद्ध हो रहे हैं।

व्याख्या – सन्त–महात्माओं के मंगलकारी उपदेश इस धरती पर निरन्तर प्रसारित होते रहे हैं, परन्तु विषय–वासनाओं से पीड़ित अभागे लोग फिर भी सुख–शांति से वंचित ही रहे हैं। वे आज भी अपनी वासनात्मक प्रवृत्तियों के पंक में धंसे हुए हैं। असहाय मानव–जाति पर कल्याणकारी उपदेशों का कोई असर नहीं हो रहा। मानव की भोगलिप्सा यथावत् बरकरार है।

विशेष –

1. यहां कवि ने सर्वमंगल कामना का स्वर भास्वर किया है। कवि की मान्यता है कि भोग–विलास की प्रवृत्ति मनुष्य को सन्ताप को गड्ढे में धकेल रही है।
2. भाषा सरल, तरल एवं भावानुकूल है।
3. सटीक शब्द–चयन भावाभिव्यक्ति को सम्प्रेषणीय बनाता है।
4. अनुप्रास, रूपक एवं विशेषोक्ति अलंकारों की छटा देखते ही बनती है।

भीष्म हों अथवा युधिष्ठिर या कि हों भगवान,
बुद्ध हों कि अशोक, गाँधी हों कि ईसु महान;
सिर झुका सबको, सभी को श्रेष्ठ निज से मान,
मात्र वाचिक ही उन्हें देता हुआ सम्मान,
दग्ध कर पर को, स्वयं भी भोगता दुख–दाह,
जा रहा मानव चला अब भी पुरानी राह।

शब्दार्थ – भगवान = श्री कृष्ण, बुद्ध = गोत्तम बुद्ध, ईसु = ईसा मसीह, निज = खुद, वाचिक = वाणी से, मात्र = केवल, सम्मान = आदर, दग्ध = जलाना, पर को = दूसरे को, दुख–दाह = दुख की आग, राह = रास्ता।

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर द्वारा रचित प्रबन्धकाव्य 'कुरुक्षेत्र' से लिया गया है। ये पंक्तियां छठे सर्ग में विद्यमान हैं। सारा विश्व वैमनस्य की आग में जल रहा है। लोगों की कथनी और करनी में प्रवंचना भरी पड़ी है। लोग महापुरुषों की अमृतवाणी को भी अनसुनी करते जा रहे हैं। पर–पीड़न की दुर्भावना से ग्रस्त होने के कारण लोग नारकीय जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

व्याख्या – मानव–जाति के दुःख–दर्दों को दूर करने के लिए इस संसार में अनेक सन्त–महात्माओं का आविर्भाव हुआ। चाहे, भीष्म पितामह हो, धर्मराज युधिष्ठिर हों, कृष्ण भगवान हो, महात्मा बुद्ध हों, सम्राट अशोक हो, महात्मा गाँधी हों या ईसा मसीह हों, इन सबने माननीय–मूल्यों की स्थापना करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। लोगों ने इनके उपदेशों को सिर झुका कर सुना। इन्हें श्रेष्ठ एवं लोककल्याण के अग्रदूत माना। यह सब लोगों की वाणी तक ही सीमित रहा। उन्होंने इन महापुरुषों का गुणगान तो मुक्तकंठ से किया पर इनकी शिक्षाओं को अपने जीवन में नहीं उतारा। आज मनुष्य परपीड़न में ही अपने जीवन की इतिश्री समझता है। इसी दुर्भावना के कारण उसे स्वयं भी दुःख की

आग में जलना पड़ता है। लगता है कि मानव आज भी अपनी हिंसक प्रवृति से निजात नहीं पा सका है। वह आज भी पुरानी जंगली जीवन पद्धति में विश्वास करता है।

विशेष –

1. यहां कवि ने भीष्म पितामह, युधिष्ठिर, श्रीकृष्ण भगवान, महात्मा बुद्ध, सम्राट अशोक, महात्मा गांधी एवं ईसा मसीह जैसे उदारचेता महानुभावों के शांतिप्रद उपदेशों को रेखांकित करने का सुष्ठु प्रयास किया है।
2. यह भी दर्शाया है कि मनुष्य इन महापुरुषों की वाणी की प्रशंसा तो करता है, पर उसे अपने जीवन में चरितार्थ नहीं करता।
3. भाषा सरल, तरल एवं भावानुकूल है।
4. अनुप्रास, रूपक, उल्लेख एवं विशेषोक्ति अलंकारों का मणिकांचन संयोग देखते ही बनता है।

अपहरण, शोषण वही, कुत्सित वही अभियान,

खोजना चढ़ दूसरों के भस्म पर उत्थान;

शील से सुलझा न सकना आपसी व्यवहार,

दौड़ना रह–रह उठा उन्माद की तलवार।

द्रोह से अब भी वही अनुराग,

प्राण में अब भी वही फुंकार भरता नाग।

शब्दार्थ – अपहरण = किसी को चोरी–चुपके उठा ले जाना, कुत्सित = घृणित, बुरा, अभियान = आक्रमण, हमला, भस्म = राख, उत्थान = उन्नति, शील = सद्भाव, उन्माद = पागलपन, द्रोह = शत्रुता, अनुराग = प्रेम, नाग = सर्प।

प्रसंग – प्रस्तुत पंक्तियां राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर द्वारा रचित उनकी प्रसिद्ध काव्यकृति 'कुरुक्षेत्र' के छठे सर्ग से ली गई हैं। इस प्रबन्धकाव्य में युद्ध और शांति के कारण और निवारण पर बड़ी गंभीरतापूर्वक विचार किया गया है। इस सर्ग में कवि ने साम्प्रतिक परिवेश की कुत्सित परिस्थितियों का मार्काखेज विवेचन किया है। कवि ने मनुष्य की हिंसक प्रवृत्ति, द्वेषी स्वभाव एवं उसके उन्मादी आचरण का कच्चा चिट्ठा खोल कर रख दिया है। दिनकर जी ने मनुष्य की विषाक्त एवं विध्वंसकारी प्रवृतियों को दर्शाते हुए लिखा है–

व्याख्या – आज भी मनुष्य जंगली जानवर की हिंसक प्रवृत्ति का शिकार है। वह दूसरों को मार कर उनके धन–वैभव पर अपना अधिकार जमाना चाहता है। उसकी यह आदिम प्रवृत्ति आज भी ज्यों की त्यों कायम है। वह किसी भी समस्या को सद्भावपूर्वक सुलझाने का प्रयास नहीं करता, वरन् उन्मादी तलवार के बल पर सर्वत्र अपना अधिकार जमाना चाहता है। आज भी हिंसक पशुता उसके हृदय में आसन लगाए बैठी है। उसके प्राणों में वैमनस्य का विषधर विषैली फुंकार मार रहा है। ऐसी भयावह स्थिति में शांति की कल्पना भी नहीं की जा सकती।

विशेष –

1. यहां कवि ने समाज को उत्पीड़ित करने वाली दुर्भावनापूर्ण कटु प्रवृत्तियों का लेखा–जोखा प्रस्तुत किया है। अपहरण, शोषण, आधिपत्य आदि कुप्रवृतियों का चारों और बोलबाला है।

2. भाषा सरल, सहज एवं भावानुकूल है।

3. सटीक शब्द–चयन से अभिव्यक्ति में निखार आया है।

4. अनुप्रास, विरोधाभास, रूपक, वीप्सा आदि अलंकारों का सुष्ठु संयोजन बहुत सुन्दर बन पड़ा है।

पूर्व युग–सा आज का जीवन नहीं लाचार,
आ चुका है दूर द्वापर से बहुत संसार;
यह समय विज्ञान का, सब भाँति पूर्ण, समर्थ;
खुल गये हैं गूढ़ संसृति के अमित गुरु अर्थ।
चीरता तम को, सँभाले बुद्धि की पतवार,
आ गया है ज्योति की नव भूमि में संसार।

शब्दार्थ – पूर्व युग = प्राचीन काल, लाचार = विवश, बेबस, समर्थ = सक्षम, गूढ़ संसृति = रहस्यमय संसार, अमित = अपार, गुरु = बड़ा, गहन, तम = अन्धकार, अज्ञान, ज्योति = प्रकाश, नव = नई।

प्रसंग– प्रस्तुत पद्यांश राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर द्वारा रचित प्रबन्धकाव्य 'कुरुक्षेत्र' के षष्ठ सर्ग से उद्धृत है। इस कृति में युद्ध और शान्ति के विविध आयामों को उद्घाटित किया गया है। जबकि इस सर्ग में विश्व के समसामयिक परिवेश को दर्शाया गया है। इन पंक्तियों में वर्तमान वैज्ञानिक उन्नति को रेखांकित किया गया है।

व्याख्या – कवि की मान्यता है कि आधुनिक युग का जीवन प्राचीन युग के समान बेबस एवं मजबूर नहीं है क्योंकि अब यहां द्वापर युग जैसी स्थिति नहीं है। अब विज्ञान का युग है, जिसमें सब प्रकार की सुविधाएँ उपलब्ध हैं। वैज्ञानिक सामर्थ्य के कारण संसार के सभी रहस्य उद्घाटित हो चुके हैं तथा विज्ञान ने सृष्टि के अनेक गंभीर अर्थों का भेद पा लिया है। वैज्ञानिक आविष्कारों से अज्ञान का अंधकार मिट गया है तथा चारों ओर ज्ञान की नई किरणों का प्रकाश फैल रहा है। तात्पर्य यह है कि वैज्ञानिक उन्नति के बल पर मनुष्य दिनोंदिन समृद्धि के सोपान पर चढ़ता जा रहा है।

विशेष –

1. प्रदत्त पंक्तियों में कवि ने वर्तमान युग की वैज्ञानिक उन्नति को दर्शाने का प्रयास किया है। वैज्ञानिक विकास से मनुष्य शक्तिसम्पन्न एवं बुद्धिमान होता जा रहा है।

2. सटीक शब्द –चयन से अभिव्यक्ति सम्प्रेषणीय हो गई है।

3. उपमा, रूपक एवं अनुप्रास अलंकार सहज ही देखे जा सकते हैं।

4. प्रतीकात्मक शब्दावली से प्रभविष्णुता और भी बढ़ गई है।

आज की दुनिया विचित्र, नवीन;
प्रकृति पर सर्वत्र है विजयी पुरुष आसीन।
हैं बँधे नर के करों में वारि, विद्युत, भाप,
हुक्म पर चढ़ता–उतरता है पवन का ताप।

हैं नहीं बाकी कहीं व्यवधान,

लाँघ सकता नर सरित्, गिरि, सिन्धु एक समान।

शब्दार्थ – विचित्र = अद्‌भुत, निराला, नवीन = नया, सर्वत्र = सब जगह, आसीन = आरूढ़, मोजूद, नर = मनुष्य, करों में = हाथों में, वारि = पानी, विद्युत = बिजली, भाप = वाष्प, हुक्म = आज्ञा, आदेश, पवन = वायु, व्यवधान = बाधा, सरित् = नदी, गिरि = पहाड़, सिन्धु = समुद्र।

प्रसंग – प्रस्तुत पद्यांश राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर द्वारा रचित प्रसिद्ध प्रबन्धकाव्य 'कुरुक्षेत्र' के षष्ठ सर्ग से लिया गया है। इस कृति में युद्ध और शांति से सम्बद्ध विविध स्थितियों पर चिन्तन–मनन किया गया है। प्रदत्त पद्यांश में मानव–जाति द्वारा अर्जित वैज्ञानिक आविष्कारों के चमत्कार को रेखांकित किया गया है। संसार में वैज्ञानिक उन्नति से आए परिवर्तन को दर्शाते हुए कवि कहता है कि–

व्याख्या – आज का संसार पहले वाला संसार नहीं है। यह एकदम अद्‌भुत एवं नया है। आज के मानव ने प्रकृति को पूर्णरूप से जीत लिया है। सब जगह उसकी विजय पताका फहरा रही है। प्रकृति की समस्त निधियों पर मनुष्य का आधिपत्य है। आज उसने पानी, बिजली, वाष्प आदि को पूर्णतः अपने बस में कर लिया है। आज वायु की गति एवं गर्मी मनुष्य की आज्ञानुसार ही बढ़ती और घटती है। अब मनुष्य की राह में कहीं भी किसी प्रकार की कोई बाधा नहीं है। अब वह नदी, पर्वत और समुद्र को सुविधापूर्वक पार कर सकता है। भाव यह है कि वह विज्ञान के बल पर कहीं भी उड़ान भर सकता है।

विशेष –

1. भाव यह है कि जैसे रावण ने सभी (जल, वायु, अग्नि आदि) देवताओं को अपने बस में कर रखा था, वैसे ही आज मनुष्य ने प्रकृति के सभी उपादानों को अपने बस में कर रखा है।
2. भाषा सरल, तरल एवं भावनुकूल है।
3. सटीक शब्द –चयन बड़ा प्रभावात्मक बन पड़ा है।
4. अलंकारों का प्रयोग एवं वर्णनात्मक काव्य–शैली पाठक को अनायास ही प्रभावित करती है।

सीस पर आदेश कर अवधार्य,

प्रकृति के सब तत्त्व करते हैं मनुज के कार्य।

मानते हैं हुक्म मानव का महा वरुणेश,

और करता शब्दगुण अम्बर वहन संदेश।

नव्य नर की मुष्टि में विकराल

हैं सिमटते जा रहे प्रत्येक क्षण दिक्काल।

शब्दार्थ– सीस = सिर, आदेश = आज्ञा, अवधार्य = धारण करके, तत्त्व = उपादान (वायु, जल, अग्नि आदि), मनुज = मनुष्य, हुक्म = आज्ञा, वरूणेश = जल के देवता वरूण, क्षण = पल, शब्दगुण = आवाज, वाणी, अम्बर = आकाश, वहन = धारण करना, मुष्टि = मुट्ठी, नव्य नर = आधुनिक मनुष्य, विकराल = भयंकर, दिक्काल = दिशा और समय।

प्रसंग – प्रस्तुत पद्यांश महाकवि रामधारी सिंह दिनकर की लेखनी से निसृत प्रसिद्ध प्रबन्धकाव्य 'कुरुक्षेत्र' के छठे सर्ग से लिया गया है। इस पुस्तक में दिनकर जी ने विश्वव्यापी युद्ध और शांति की स्थिति का विश्लेषणात्मक विवेचन किया है। इन पंक्तियों में कवि ने प्रकृति पर मनुष्य के जयघोष को निनादित किया है। प्रकारान्तर से प्रकृति को मनुष्य की चेरी के रूप में दर्शाया गया है।

व्याख्या – कवि के मतानुसार मनुष्य ने प्रकृति पर पूर्णतः अपना अधिकार जमा लिया है क्योंकि प्रकृति के सभी उपादान मनुष्य के आदेश को शिरोधार्य करके उसके सभी कार्यों को पूर्ण करते हैं। यहां तक कि जल–देवता वरुण भी मनुष्य के आदेश का पालन करता है। आकाश भी वायु तरंगों में संजोकर मनुष्य के सन्देश को एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाता है। सम्प्रति मनुष्य की शक्ति इतनी बढ़ गई है कि वह प्रति पल दिग्दिगान्त और महाकल को भी अपनी उंगली पर नचाता है। भावार्थ यह है कि प्रकृति का प्रत्येक अंग–उपांग मनुष्य के आदेश को मानने के लिए तत्पर दिखाई पड़ता है।

विशेष–

1. कवि कहता है कि वैज्ञानिक प्रगति के बल पर मनुष्य ने प्रकृति की सभी शक्तियों पर अपना अधिकार जमा लिया है।
2. भाषा, सरल, तरल एवं भावानुकूल है।
3. सटीक शब्द –चयन से अभिव्यक्ति प्रभावात्मक हो गई है।
4. मानवीकरण एवं दृष्टान्त अलंकारों का सम्यक् संयोजन है।

यह प्रगति निस्सीम ! नर का यह अपूर्व विकास!

चरण–तल भूगोल! मुट्ठी में निखिल आकाश!

शब्दार्थ – प्रगति = उन्नति, निस्सीम = असीम, अपार, अपूर्व = अद्भुत, चरण–तल = पैरों के नीचे, निखिल = सम्पूर्ण, अखिल, अखण्ड।

प्रसंग – प्रस्तुत पद्यांश राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर द्वारा रचित प्रबन्धकाव्य 'कुरुक्षेत्र' से उद्धत किया गया है। ये पंक्तियां कुरुक्षेत्र के छठे सर्ग की शोभा बढ़ा रही हैं। कवि मनुष्य की अद्भुत वैज्ञानिक उन्नति से अभिभूत है। उसने समस्त ब्रह्माण्ड में अपना एकछत्र राज्य स्थापित कर लिया है। तभी तो कवि कहता है कि –

व्याख्या – मनुष्य की वैज्ञानिक उन्नति का कोई ओर–छोर नहीं, वह अपरिमेय एवं असीम है। मनुष्य की यह उन्नति निश्चय ही अद्भुत एवं अद्वितीय है। उसने समस्त भूमण्डल को अपने बस में कर लिया है, अतः धरती उसकी चरण–रज को अपने मस्तक पर धारण करती है। सारा आकाश उसकी मुट्ठी में है। सर्वत्र उसी का बोलबाला है।

विशेष –

1. वैज्ञानिक उन्नति का चरमोत्कर्ष दर्शाया गया है।
2. मुहावरेदार भाषा से भावों की प्रांजलता बढ़ गई है।
3. एक–एक शब्द विशेष भाव से गर्भित है।

4. तत्सम और तद्भव शब्दों का मंजुल मेल प्रशंसनीय है।

किन्तु, है बढ़ता गया मस्तिष्क ही निःशेष,

छूट कर पीछे गया है रह हृदय का देश'

नर मनाता नित्य नूतन बुद्धि का त्योहार,

प्राण में करते दुखी हो देवता चीत्कार।

शब्दार्थ – मस्तिष्क = दिमाग, बुद्धि निःशेष = सम्पूर्ण, हृदय = दिल देश = स्थान, नर = मनुष्य, नित्य = सदा, नूतन = नया, बुद्धि का त्यौहार = बौद्धिक विकास पर प्रसन्नता, चीत्कार = हाहाकार, वेदना से चिल्लाना।

प्रसंग – प्रस्तुत पंक्तियां महाकवि रामधारी सिंह दिनकर द्वारा रचित प्रबन्धकाव्य 'कुरुक्षेत्र' के छठे सर्ग से ली गई हैं। इस कृति में कवि ने विश्वव्यापी युद्ध और शांति के सम्बन्ध में अपने विचारों का प्रतिपादन किया है। इन पंक्तियों में दर्शाया गया है कि आज के मानव के आत्मोज पर बुद्धि की गुलकारियां छा गई हैं, वैज्ञानिक उन्नति ने उसे नितान्त हृदयहीन बना छोड़ा है।

व्याख्या – कवि का कथन है कि वैज्ञानिक उन्नति के साथ–साथ मनुष्य की बुद्धि ही बढ़ती रही, उसका हृदय इस दौड़ में पिछड़ गया । मनुष्य निरन्तर वैज्ञानिक उत्कर्ष को त्योहार की तरह मनाने में तल्लीन होता रहा, उसने हृदय पक्ष की पूर्णतः अवहेलना कर दी। नए–नए आविष्कार उसकी बुद्धि को तो उत्फुल्ल करते रहे पर हृदयगत भावों की उपेक्षा हाती रही। मनुष्य के मन में जो देवत्व की भावना थी वह उत्पीड़ित होकर हाहाकार करने लगी। अर्थात् मनुष्य के हृदय से दया, ममता, प्रेम, सदाचार आदि मानवीय मूल्य निरन्तर नदारद होते जा रहे हैं।

विशेष –

1. कवि की मान्यता है कि वैज्ञानिक उपलब्धियों की आड़ में मनुष्य के बौद्धिक विकास ने हृदय की कोमल भावनाओं का गला घोंट डाला है।
2. भाषा सरल एवं भावानुकूल है।
3. संस्कृतनिष्ठ शब्दों के प्रयोग से भावाभिव्यक्ति में गंभीरता आ गई है।
4. अनुप्रास एवं रूपक अलंकारों का सहज प्रयोग हुआ है।

चाहिए उनको न केवल ज्ञान,

देवता हैं माँगते कुछ स्नेह, कुछ बलिदान,

मोम–सी कोई मुलायम चीज,

ताप पाकर जो उठे मन में पसीज–पसीज;

प्राण के झुलसे विपिन में फूल कुछ सुकुमार;

ज्ञान के मरु में सुकोमल भावना की धार;

शब्दार्थ– स्नेह = प्रेम, बलिदान = त्याग, मुलायम = कोमल, ताप = गर्मी, पसीज–पसीज = पिंघल–पिंघल, झुलसे = जले हुए, विपिन = बाग, सुकुमार = कोमल, मरु = रेगिस्तान, धार = धारा।

प्रसंग– प्रस्तुत पंक्तियां राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर द्वारा रचित प्रबन्धकाव्य 'कुरुक्षेत्र' के छठे सर्ग से ली गई हैं। इस कृति में दिनकर जी ने विश्वव्यापी युद्ध और शांति की संभावित स्थितियों का विशद विवेचन किया है। यहां कवि कहना चाहता है कि मनुष्य को सुखद जीवन जीने के लिए बुद्धि और हृदय के समन्वय की आवश्यकता है। केवल बुद्धि (ज्ञान) के सहारे जीवन की गाड़ी नहीं चल सकती। इसके लिए हृदय का स्नेह (तेल) भी नितान्त आवश्यक है।

व्याख्या– मनुष्य–जीवन में केवल ज्ञान ही यथेष्ट नहीं है। इसके सम्यक् संचालन के लिए प्रेम और त्याग की भावना का होना भी आवश्यक है। मनुष्य के हृदय में समाहित मोम जैसी भावनाओं का उत्फुल्ल होना जरूरी है। त्याग और तप जैसे गुण मनुष्य की भावनाओं को स्निग्ध एवं सुकोमल बना देते हैं, जिससे जीवन के उजड़े उद्यान में बहार आ जाती है, फूल खिल उठते हैं। कोमल भावनाओं के प्रवाह से ज्ञान के रेगिस्तान में सुरभीले फूल मुस्कराने लगते हैं। भावार्थ यह है कि बुद्धि से खिन्न नीरस जीवन में खुशियों का संचार करने के लिए हृदय की कोमल भावनाओं का साहचर्य अत्यावश्यक है।

विशेष–

1. बुद्धि और हृदय के समन्वय से जी जीवन सुखद बन सकता है। ये दोनों जीवन की गाड़ी के पहिए हैं।
2. भाषा भावानुकूल सरल एवं तरल है।
3. अनुप्रास, रूपक, उपमा, वीप्सा आदि अलंकार अभिव्यक्ति के सौन्दर्य को बढ़ा रहे हैं।
4. बुद्धि और हृदय की तरह विचार और भावों का सुन्दर समन्वय है।

चाँदनी की रागिनी, कुछ भोर की मुसकान;
नींद में भूली हुई बहती नदी का गान ;
रंग में घुलता हुआ खिलती कली का राज;
पत्तियों पर गूँजती कुछ ओस की आवाज;
आँसुओं में दर्द की गलती हुई तस्वीर;
फूल की, रस में बसी–भींगी हुई जंजीर।

शब्दार्थ– चाँदनी = रोशनी, रागिनी = संगीत से भरा गीत, भोर = प्रातःकाल, मुसकान = मुस्कराहट, गान = गाना, राज = रहस्य, दर्द = पीड़ा, तस्वीर = चित्र, जंजीर = शृंखला

प्रसंग – प्रस्तुत पद्यांश राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर द्वारा रचित प्रबन्धकाव्य 'कुरुक्षेत्र' के छठे सर्ग से लिया गया है। इस रचना में विश्वव्यापी युद्ध और शांति की ज्वलन्त समस्या पर विचार–मंथन किया गया है। यहां कवि ने बुद्धि–विलास की अपेक्षा हृदय की कोमल भावनाओं को रेखांकित करने का प्रशस्य प्रयास किया है।

व्याख्या – आज मनुष्य को स्निग्ध चाँदनी रात की संगीतात्मक स्वरलहरियों की आवश्यकता है। प्रातः काल जैसी मधुर मुस्कान भी उसे चाहिए अर्थात् गीत–संगीत से सजी चांदनी रातें और हंसता – मुस्कराता सवेरा मनुष्य के जीवन में खुशियों का आधान कर सकता है। मस्ती में भरी कल–कल निनादिनी सरिता का मधुर संगीत मनुष्य की हृदय–तंत्री को झंकृत कर सकता है। चटक कर फूल

बनती कलियों के रंग का रहस्य और पत्तियों पर सुशोभित प्रातःकालीन ओस की चमकीली बून्दें मनुष्य की सब पीड़ाओं का उपचार कर देती हैं। यही नहीं, आस–पास के पीड़ितों की आँखो से बहने वाले आँसुओं से भी उसके हृदय में संवेदना का ज्वार उमड़ना चाहिए। फूलों की महक और आकुल अन्तर से निकली टीस के प्रति उसे संवेदनशील होना चाहिए।

विशेष –

1. कवि का कहना है कि मनुष्य को अपने परिवेश के प्रति संवेदनशील होना चाहिए। दीन–दुःखियों के आँसू पोंछ कर ही मनुष्य वास्तविक प्रसन्नता का अनुभव का सकता है।
2. भावाभिव्यक्ति दार्शनिकता से कुछ बोझिल हो गई है।
3. अनुप्रास, मानवीकरण, उल्लेख आदि अलंकारों का प्रयोग देखा जा सकता है।
4. इन पंक्तियों में छायावाद की प्रवृत्ति झलकती है।

धूम, कोलाहल, थकावट धूल के उस पार,
शीत जल से पूर्ण कोई मन्दगामी धार;
वृक्ष के नीचे जहाँ मन को मिले विश्राम,
आदमी काटे जहाँ कुछ छुट्टियाँ, कुछ शाम।
कर्म–संकुल लोक–जीवन से समय कुछ छीन,
हो जहाँ पर बैठ नर कुछ पल स्वयं में लीन;

शब्दार्थ– धूम = धुआं, कोलाहल = शोर, शीत= शीतल, मन्दगामी = धीरे–धीरे बहने वाली, धार = धारा, वृक्ष = पेड़, विश्राम = आराम, कर्म–संकुल = गोरख धंधे में फंसा हुआ, छीन = हथियाना, नर = मनुष्य

प्रसंग – प्रस्तुत पंक्तियां राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर द्वारा रचित प्रबन्धकाव्य 'कुरुक्षेत्र' के षष्ठ सर्ग से ली गई हैं। इस कृति में विश्वव्यापी युद्ध और शांति की समस्या पर विशद विश्लेषण एवं विवेचन किया गया है। इन पंक्तियों में बताया गया है कि मनुष्य उन्नति की आपाधापी को छोड़कर प्रकृति की गोदी में कुछ समय गुजार कर अपने जीवन में सुख–शांति ला सकता है।

व्याख्या – मनुष्य जीवन के गोरख धंधों में फंसा रहने के कारण बहुत दुखी है। वैज्ञानिक उन्नति के कारण वह धुएं, शोर और धूल–मिट्टी में सना थकावट अनुभव कर रहा है। अतः इस व्यस्त जीवन से कुछ पल बचा कर उसे शीतल मन्द पवन और कल–कल निनादिनी सरिता के कूलों पर आराम करने की आवश्यकता है। वृक्षों की ठण्डी छाया में उसके मन को सकुन मिल सकता है जीवन की आपाधापी से छुटकारा पाकर उसे कुछ समय प्रकृति की गोदी में बैठकर बिताना चाहिए जहां दीन–दुनिया के चक्कर से निजात पाकर वह कुछ पल चैन से बिता सके।

विशेष–

1. वैज्ञानिक युग में मनुष्य यंत्रवत् कार्यरत रहता है। अतः उसे मन की शांति के लिए एकान्त प्रकृति की गोद में ही विश्राम करना चाहिए।
2. भाषा सरल एवं भावानुकूल है।

3. जीवन में क्रियशीलता के साथ–साथ मनोरंजन की भी महत्ती आवश्यकता है।

फूल–सा एकान्त में उर खोलने के हेतु,

शाम को दिन की कमाई तोलने के हेतु।

शब्दार्थ– एकान्त – जहां कोई और न हो, उर = हृदय, तोलने के हेतु = मूल्यांकन करने के लिए।

प्रसंग – यह पद्यांश राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर द्वारा रचित 'कुरुक्षेत्र' के छठे सर्ग से लिया गया है। इस कृति में वर्तमान विश्व की युद्ध और शांति सम्बन्धी स्थिति पर गहन चिन्तन किया गया है। प्रस्तुत पंक्तियों में बताया गया है कि जीवन में भौतिक उन्नति के अतिरिक्त प्यार–प्रेम एवं संवेदनशीलता की भी बहुत आवश्यकता है।

व्याख्या – मनुष्य को जीवन के कोलाहल से दूर किसी एकान्त स्थान पर बैठकर शांतिपूर्वक कुछ समय व्यतीत करना चाहिए। उसे सांयकाल अपने दिनभर किए गए क्रियाकलापों का मूल्यांकन करना चाहिए अर्थात् उसे विचार करना चाहिए कि आज क्या खोया और क्या पाया।

विशेष –

1. मनुष्य को मशीनी जिंदगी से दूर भावनात्मक जीवन जीने की आवश्यकता है।
2. भाषा सहज, सरल एवं भावानुकूल है।
3. उपमा अलंकार का सुष्ठु प्रयोग हुआ है।

ले चुकी सुख–भाग समुचित से अधिक है देह,

देवता हैं माँगते मन के लिए लघु गेह।

शब्दार्थ – समुचित = उचित, देह = शरीर, लघु गेह = छोटा घर।

प्रसंग– प्रस्तुत पंक्तियां राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर द्वारा रचित प्रबन्धकाव्य 'कुरुक्षेत्र' के छठे सर्ग से ली गई हैं। इस कृति में विश्वव्यापी युद्ध एवं शांति की विकट समस्या पर गहन मंथन किया गया है। इन पंक्तियों का आशय है कि मनुष्य ने वैज्ञानिक उन्नति के बल पर बहुत सुख–सुविधाओं को भोगा है। अब उसके मन में दया, ममता, प्रेम जैसे कोमल भावों को जागृत होना चाहिए।

व्याख्या – कवि कहना चाहता है कि आधुनिक युग में मनुष्य ने शारीरिक उपभोग के लिए बेशुमार साधन जुटाए हैं। भौतिक धन–सम्पदा के बल पर वह अनेक सुख–साधनों का उपयोग कर रहा है, किन्तु उसके हृदय मे देवता के लिए कोई स्थान नहीं है जबकि संवेदना, सद्भाव, स्नेह आदि उदात्त भावों को भी उसके हृदय में स्थान मिलना चाहिए।

विशेष –

1. केवल भौतिक सुख–सुविधाएँ मनुष्य को मनुष्य नहीं बनाती। जीवन को सफल बनाने के लिए प्रेम, संवेदना आदि उदात्त भावों का होना भी आवश्यक है। तभी तो कबीर जी ने कहा था–

जा घट प्रेम न संचरे, सो घट जान मसान।

जैसे खाल लुहार की, सांस लेतु बिन प्रान।।

2. सहज, सरल भावानुकूल भाषा–शैली।

3. सटीक शब्द चयन से अभिव्यक्ति सशक्त हो गई है।

हाय रे मानव, नियति के दास !

हाय रे मनुपुत्र, अपना आप ही उपहास!

प्रकृति की प्रच्छन्नता को जीत,

सिन्धु से आकाश तक सबको किये भयभीत ;

सृष्टि को निज बुद्धि से करता हुआ परिमेय,

चीरता परमाणु की सत्ता असीम, अजेय।

शब्दार्थ – नियति = भाग्य, मनुपुत्र = मानव, उपहास = मज़ाक, प्रच्छन्नता = रहस्यमयता, सिन्धु = समुद्र, सृष्टि = संसार, निज= अपनी, परिमेय = मापने योग्य, सत्ता = शक्ति, असीम = अनन्त, अपार, अजेय = जिसे जीता न जा सके।

प्रसंग – प्रस्तुत पंक्तियां राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर द्वारा रचित प्रबन्धकाव्य 'कुरुक्षेत्र' के छठे सर्ग से ली गई हैं। इस कृति में समसामयिक विश्व की युद्ध और शांति के कारण एवं निवारण पर गहन चिन्तन किया गया है। कवि का विचार है कि आज के मानव ने वैज्ञानिक आविष्कारों के बल पर बहुत उन्नति की है। उसने प्रकृति के रहस्यों को खोलकर रख दिया है, पर उसे मानसिक सन्तोष नहीं मिल पाया है, जिसके बिना जीवन छूँछा है। यह उसके जीवन की विडम्बना है।

व्याख्या – मनुष्य वैज्ञानिक उन्नति करके भी अपना भाग्य नहीं बना पाया, वह अब भी भाग्य के अधीन है। कितने अफसोस की बात है कि मानव आज स्वयं उपहास का पात्र बना हुआ है। उसने प्रकृति के रहस्यों पर विजय प्राप्त कर ली है। समुद्र से आकाश तक सब उससे डरे हुए हैं। अर्थात् उसने समुद्र की गंभीरता और आकाश की विशालता को नतमस्तक कर दिया है। उसने अपनी बुद्धि से ब्रह्माण्ड के चप्पे–चप्पे को नाप लिया है। उसने परमाणु की अपार एवं अपरिमेय शक्ति को भी हथिया लिया है किन्तु खेद की बात यह है कि वह मानवता से कोसों दूर जा पहुँचा है। पता नहीं इन आसुरी शक्तियों के परिणाम कितने भयंकर होंगे।

विशेष :

1. यद्यपि मनुष्य ने वैज्ञानिक उपलब्धियों के अम्बार लगा दिए हैं, फिर भी हृदयहीनता के कारण उसका जीवन मजाक बन कर रह गया है।
2. भाषा सरल, तरल एवं भावानुकूल है।
3. वक्रोक्ति एवं अनुप्रास अलंकारों का सुष्ठु प्रयोग है।
4. सटीक शब्द–चयन से भाषा में प्रांजलता आ गई है।

बुद्धि के पवमान में उड़ता हुआ असहाय

जा रहा तू किस दिशा की ओर को निरुपाय?

लक्ष्य क्या? उद्देश्य क्या? क्या अर्थ?

यह नहीं यदि ज्ञात, तो विज्ञान का श्रम व्यर्थ।

शब्दार्थ– पवमान = अंधड, तूफान, असहाय = बेसहारा, निरुपाय = साधनहीन, विवश, लक्ष्य = मंजिल, गंतव्य, अर्थ = मतलब, ज्ञात = मालूम, श्रम = मेहनत, व्यर्थ = बेकार।

प्रसंग – प्रस्तुत पंक्तियां राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर द्वारा रचित प्रसिद्ध प्रबन्धकाव्य 'कुरुक्षेत्र' के षष्ठ सर्ग से उद्धृत की गई हैं। इस रचना में दिनकर जी ने विश्वव्यापी युद्ध और शान्ति की विकट समस्या पर बड़ी गंभीरता से विचार किया है। इन पंक्तियों में उन्होंने बुद्धि सम्पन्न मनुष्य की उद्देश्यहीनता को रेखांकित किया है। उसके जीवन की कैसी विडंबना है कि बुद्धिमान होते हुए भी उसे अपनी राह की पहचान नहीं, मंजिल का ज्ञान नहीं, उद्देश्यहीन तिनकों की तरह बुद्धि के अंधड़ में उड़ा जा रहा है।

व्याख्या – कवि मनुष्य को सम्बोधित करते हुए कह रहा है कि हे लाचार मनुष्य, तू बुद्धि के प्रभंजन में फंस कर कहां उड़ा जा रहा है। हे विवश एवं मजलूम आदमी तुझे तो यह भी नहीं पता कि तुझे किस दिशा में और कहां जाना है। न तेरा कोई उद्देश्य है और न ही कोई निश्चित मंजिल है। तू तो हवा में उड़ते पत्ते की तरह अनन्त आकाश में धक्के खा रहा है। तुझे तेरे मंतव्य और गंतव्य का भी पता नहीं तो तेरी वैज्ञानिक उन्नति किसी काम की नहीं, यह व्यर्थ है, बेकार है। दिशा–हीन वैज्ञानिक उन्नति मनुष्य के किस काम की है।

विशेष :

1. यहां दिशाहीन वैज्ञानिक उन्नति की खिल्ली उड़ाई गई है। जो विकास मनुष्य को मनुष्य की तरह जीना न सिखाए वह व्यर्थ है, महत्त्वहीन है।
2. सटीक शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
3. भाषा सरल एवं व्यंग्यात्मक है।
4. रूपक एवं प्रश्न अलंकारों का सुष्ठु प्रयोग प्रभावात्मक है।

सुन रहा आकाश चढ़ ग्रह–तारकों का नाद;

एक छोटी बात ही पड़ती न तुझको याद।

एक छोटी, एक सीधी बात,

विश्व में छायी हुई है, वासना की रात।

शब्दार्थ – ग्रह = नक्षत्र, तारक = तारे, नाद = आवाज, विश्व = संसार, वासना = लालसा।

प्रसंग – प्रस्तुत पंक्तियां राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर द्वारा रचित प्रसिद्ध प्रबन्धकाव्य 'कुरुक्षेत्र' के षष्ठ सर्ग से ली गई हैं। इस कृति में समसामयिक विश्वव्यापी युद्ध और शांति की विकट समस्या पर गहन मंथन किया गया है। इन पंक्तियों में बताया गया है कि वैज्ञानिक उन्नति के बल पर मनुष्य ने चाहे नक्षत्रों की भाषा को समझ लिया हो पर वह मानवीय संवेदनाओं को भूल बैठा है। आज अनन्त लालसाओं के वशीभूत होकर वह अन्धा हो गया है। अपनी इसी प्रवृत्ति के कारण वह दुःखी है।

व्याख्या – आज मनुष्य ने अनन्त आकाश में उड़कर नक्षत्रों की आवाज सुन ली है। वह उनकी भाषा को समझने लगा है। अब उससे आकाशीय नक्षत्रों का कोई भी रहस्य छुपा हुआ नहीं है। परन्तु वह इतनी छोटी–सी बात को नहीं जानता कि वह विज्ञान का गुलाम बन गया। उसे यह सीधी–सी बात

भी समझ में नहीं आती कि विज्ञान ने उसे अन्धा बना दिया है। प्रचण्ड लालसाओं ने उसकी मानवीय संवेदनाओं को निगल लिया है। विज्ञान की इस अन्धी दौड़ में न जाने विश्व का क्या हश्र होगा।

विशेष –

1. आधुनिक वैज्ञानिक उन्नति मनुष्य में मानवीय गुणों का आधान करने में पूर्णतः अकारथ सिद्ध हुई है। मनुष्य अपनी अतृप्त इच्छाओं के मकड़जाल में उलझता जा रहा है।
2. भाषा सरल, तरल एवं भावानुकूल है।
3. सटीक शब्द–चयन से अभिव्यक्ति सशक्त हुई है।
4. शब्द की लक्षणा शक्ति का प्रयोग देखते ही बनता है।

वासना की यामिनी, जिसके तिमिर से हार,
हो रहा नर भ्रान्त अपना आप ही आहार ;
बुद्धि में नभ की सुरभि, तन में रुधिर की कीच,
यह वचन से देवता, पर, कर्म से पशु नीच।

शब्दार्थ– वासना = तृष्णा, यामिनी = रात, तिमिर = अंधकार, नर = आदमी, भ्रान्त = भटका हुआ, आहार = भोजन, नभ = आकाश, सुरभि = सुगंध, तन = शरीर, रुधिर = रक्त, कीच = कीचड़, कर्म = कार्य, पशु नीच = पाशविक वृत्ति का भ्रष्ट।

प्रसंग – प्रस्तुत पंक्तियां राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर द्वारा रचित प्रबन्धकाव्य 'कुरुक्षेत्र' के छठे सर्ग से ली गई हैं। इस कृति में कवि ने विश्व में व्याप्त युद्ध और शांति की साम्प्रदायिक समस्या पर गंभीरतापूर्वक विचार किया है। इन पंक्तियों में कवि कहता है कि वैज्ञानिक उन्नति के अभिमान में मनुष्य अपने जीवन के मूल लक्ष्य से भट गया है। वह बातें तो देवताओं जैसी करता है, पर उसके काम बर्बर पशुओं से भी निकृष्ट हैं। वह 'मुँह में राम–राम, बगल में छुरी' के सिद्धान्त पर चल रहा है।

व्याख्या – मनुष्य अपनी इच्छाओं के अन्धकूप में पड़कर, अपने जीवन के कर्त्तव्यपथ से विमुख हो गया है। जीवन के लक्ष्य से भ्रष्ट मनुष्य स्वयं ही अपनी पाशविक वृत्तियों का शिकार हो रहा है। वह अपनी बुद्धि से गगन चुम्बी सुगन्ध की बात करता है पर उसके शरीर में सड़ांधला कीचड़ भरा हुआ है। वह बात तो देवताओं जैसी करता है पर उसके कारनामे पशुओं से भी गए बीते हैं। आज दोगलापन उसके जीवन का मूल मंत्र बन गया है।

विशेष –

1. कवि ने आज के मानव की कटु यथार्थवादी मनोदशा का जीवन्त चित्रण किया है। उसकी कथनी और करनी में अन्तर, उसके जीवन की सब से बड़ी विडम्बना है।
2. सटीक शब्द–चयन से अभिव्यक्ति की प्रभावात्मकता बढ़ी है।
3. रूपक एवं विषम अलंकारों का मंजुल मेल प्रशंसनीय है।

यह मनुज,

जिसका गगन में जा रहा है यान,

काँपते जिसके करों को देख कर परमाणु।

खोल कर अपना हृदय गिरि, सिन्धु, भू, आकाश

हैं सुना जिसको चुके निज गुह्यतम इतिहास

खुल गये परदे, रहा अब क्या यहाँ अज्ञेय?

शब्दार्थ– मनुज = मनुष्य, गगन = आकाश, यान = सवारी करों को देख = हाथों के पराक्रम को देखकर, परमाणु = प्रचण्ड शक्ति, गिरि = पर्वत, सिन्धु = समुद्र, भू = धरती, गुह्यतम = अत्यन्त गोपनीय, अज्ञेय = जिसे जाना न जा सके।

प्रसंग – यह पद्यांश राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर द्वारा रचित प्रसिद्ध प्रबन्ध काव्य 'कुरुक्षेत्र' के छठे सर्ग से लिया गया है। इस कृति में दिनकर जी ने विश्वव्यापी समसामयिक युद्ध और शांति की विकट समस्या पर गंभीरतापूर्वक विचार किया है। इन पंक्तियों में बताया गया है कि वैज्ञानिक उन्नति के बल पर मनुष्य ने प्रकृति के समस्त उपादानों को अपने काबू में कर लिया है। पर्वत, सागर, धरती, अम्बर पर सर्वत्र मनुष्य का आधिपत्य है।

व्याख्या – आज मनुष्य इतना समर्थ हो गया है कि वह हवाई जहाज में बैठकर अन्तरिक्ष में भ्रमण करता है। उसके पराक्रम को देखकर सभी अणु–परमाणु उसके सामने सिर झुकाते हैं, उसके भय से काँपते हैं। पर्वत, सागर, पृथ्वी, आकाश सब के सब प्राकृतिक उपादान अपने गहनतम रहस्यों को उसके आगे उजागर कर चुके हैं। उसके सामने प्रकृति के सारे रहस्य खुल गए हैं। अब उसके लिए कुछ अज्ञात नहीं है, वह सर्वज्ञ बन गया है।

विशेष–

1. आज मनुष्य वैज्ञानिक उन्नति के उत्कर्ष पर है। अणु – परमाणु सब उसके संकेतों पर नाचते हैं।
2. सटीक शब्द – चयन अभीष्ट भावाभिव्यक्ति में कारगर सिद्ध हुआ है।
3. अनुप्रास, मानवीकरण और प्रश्न अलंकारों की छटा छिटकी हुई है।

किन्तु, नर को चाहिए नित विघ्न कुछ दुर्जेय,

सोचने को और करने को नया संघर्ष,

नव्य जय का क्षेत्र पाने को नया उत्कर्ष।

शब्दार्थ– नर = मनुष्य, नित = प्रतिदिन, विघ्न = बाधा, दुर्जेय = जिसे जीतना मुश्किल हो, संघर्ष = परिश्रम, नव्य = नया, उत्कर्ष = उन्नति।

प्रसंग– प्रस्तुत पंक्तियां राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर द्वारा रचित प्रसिद्ध प्रबन्धकाव्य 'कुरूक्षेत्र' के छठे सर्ग से ली गई हैं। इस रचना में कवि ने विश्वव्यापी युद्ध और शांति की विकट समस्या का विश्लेषण एवं विवेचन किया है। यहां बताया गया है कि मनुष्य निरन्तर बाधाओं से टकरा कर नए

– नए क्षेत्रों में अपनी विजय – पताका फहराना चाहता है।

व्याख्या– आज मानव नित्य–प्रति जीवन के कंटकाकीर्ण मार्ग पर आगे बढ़ना चाहता है। बाधाओं से टकराना उसकी नियति बन गई है। वह निरन्तर नए – नए उत्पात करके जीवन में उन्नति करने के नए – नए उपाय खोजता है। संघर्ष से खेलना और संघर्ष को ठेलना उसका स्वभाव बन गया है। नित्य नई विजय – प्राप्ति की चाहत उसे चैन से बैठने नहीं देती।

विशेष –

1. आज के मानव का मूलमंत्र है कि संघर्ष ही जीवन है। इस के मार्ग पर चलकर नूतन उपलब्धियों को प्राप्त किया जा सकता है।
2. सरल एवं तरल भाषा से अभिव्यक्ति सहज बन पड़ी है।
3. सटीक शब्द – चयन सम्प्रेषणीयता में सहायक सिद्ध हुआ है।
4. अनुप्रास युक्त – विन्यासात्मक शैली देखते ही बनती है।

पर धरा सुपरीक्षिता, विश्लिष्ट स्वाद–विहीन,
यह पढ़ी पोथी न दे सकती प्रवेग नवीन।
एक लघु हस्तामलक यह भूमिमंडल गोल,
मानवों ने पढ़ लिये सब पृष्ठ जिसके खोल।

शब्दार्थ – धरा = धरती, सुपरीक्षिता = जिसकी ठीक प्रकार परीक्षा ली जा चुकी हो, विश्लिष्ट = वियुक्त, स्वाद = विहीन – जिसमें कोई स्वाद न हो, पोथी – पुस्तक, प्रवेग = उत्साह, नवीन = नया, लघु = छोटा, हस्तामलक = हाथ पर रखा हुआ आंवला, भूमिमंडल गोल = गोलाकार पृथ्वी, पृष्ठ = पन्ने, खोल = खोलकर।

प्रसंग – प्रस्तुत पंक्तियां राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर द्वारा रचित प्रसिद्ध प्रबन्धकाव्य 'कुरूक्षेत्र' से ली गई हैं। इस पुस्तक के छठे सर्ग में इन पंक्तियों का विशिष्ट स्थान है। इस रचना में कवि ने विश्वव्यापी युद्ध और शांति की विकट समस्या का विश्लेषण एवं विवेचन किया है। यहां बताया गया है कि अपनी बुद्धि के बल पर मनुष्य सर्वज्ञ बन गया है। उससे इस पृथ्वी का कोई भी रहस्य छुपा हुआ नहीं है।

व्याख्या – इन पंक्तियों में आज के मानव की वैज्ञानिक उन्नति को उद्घाटित किया गया है। मनुष्य ने धरती रूपी पुस्तक के एक – एक पृष्ठ को अच्छी प्रकार से पढ़ लिया है। अब पृथ्वी पर ऐसी कोई बात नहीं, जिसे वह न जानता हो। हाथ पर रखे आंवले की तरह उसे पृथ्वी की हर वस्तु साफ दिखाई देती है। वैज्ञानिकों ने धरती के प्रत्येक रहस्य को भली भाँति जान लिया है।

विशेष–

1. यहाँ कवि ने मनुष्य के बुद्धिकौशल एवं उसकी वैज्ञानिक उपलब्धियों को रेखांकित किया है।
2. सटीक शब्द–चयन से अभिव्यक्ति सशक्त हो गई है।
3. अर्थ गांमीर्य के साथ शब्दों की क्लिष्टता थोड़ी अखरती है।

4. अनुप्रास एवं उपमा अलंकारों का सुष्ठ, प्रयोग हुआ है।

किन्तु, नर–प्रज्ञा सदा गतिशालिनी, उद्दाम
ले नहीं सकती कहीं रुक एक पल विश्राम।
यह परीक्षित भूमि, यह पोथी पठित, प्राचीन
सोचने को दे उसे अब बात कौन नवीन?
यह लघुग्रह भूमिमण्डल, व्योम यह संकीर्ण,
चाहिए नर को नया कुछ और जग विस्तीर्ण।

शब्दार्थ– नर–प्रज्ञा = मनुष्य की बुद्धि, गतिशालिनी = गतिशील, उद्दाम = प्रचण्ड, तेज, विश्राम = आराम, परीक्षित = जिसकी परीक्षा की जा चुकी हो, पोथी = पुस्तक, पठित = पढ़ी हुई, प्राचीन = पुरानी, नवीन = नई, लघुग्रह = छोटा–सा नक्षत्र, भूमिमंडल = धरती, व्योम = आकाश, संकीर्ण = छोटा, संकुचित, जग = दुनिया, विस्तीर्ण = विशाल।

प्रसंग– प्रस्तुत पंक्तियों राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर द्वारा रचित प्रसिद्ध प्रबन्धकाव्य 'कुरूक्षेत्र' के छठे सर्ग से ली गई हैं। इस कृति में कवि ने विश्वव्यापी समसामयिक युद्ध और शांति की विकट समस्या पर गंभीरता पूर्वक चिन्तन किया है। यहाँ कवि बताना चाहता है कि मनुष्य ने विज्ञान के बल पर पृथ्वी के सब रहस्य जान लिए हैं, आकाश भी अब उसे छोटा लगने लगा है। अब उसकी चाह कुछ और नया एवं विस्तृत ज्ञान प्राप्त करन की है।

व्याख्या– कवि का कथन है कि मनुष्य की गतिशील बुद्धि कभी विश्राम करना नहीं चाहती, वह चौगुने चाव से निरन्तर नई – नई उपलब्धियों को पाने के लिए प्रयत्नशील रहती है। उसने इस धरती के सभी रहस्यों को जान लिया है। अब तो उसे यह धरती पढ़ी हुई पुरानी पुस्तक–सी लगती है। पृथ्वी के साथ – साथ उसने अन्तरिक्ष का भी खूब निरीक्षण – परीक्षण कर लिया है। अब तो उसकी चाह है कि यह चाँद–सितारों से आगे किसी और बड़े उपग्रह की खोज करे।

विशेष –

1. कवि का आशय है कि मनुष्य की ज्ञान–पिपासा निरन्तर बढ़ती ही रहती है। वह अपनी वर्तमान स्थिति से कभी सन्तुष्ट नहीं होता।
2. भाषा सरल एवं भावानुकूल है।
3. अनुप्रास, रूपक एवं प्रश्न अलंकारों का सुष्ठु प्रयोग किया गया है
4. मनुष्य की प्रवृत्ति का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण सहज ही देखा जा सकता है।

घुट रही नर–बुद्धि की है साँस;
चाहती वह कुछ बड़ा जग, कुछ बड़ा आकाश।
यह मनुज, जिसके लिए लघु हो रहा भूगोल,
अपर–ग्रह–जय की तृषा जिसमें उठी है बोल।
यह मनुज विज्ञान में निष्णात,

जो करेगा, स्यात्, मंगल और विधु से बात।

शब्दार्थ– नर–बुद्धि = मनुष्य की बुद्धि, साँस = प्राण, जग = संसार, मनुज = मनुष्य, लघु = छोटा, भूगोल = पृथ्वी, अपर–ग्रह–जय = दूसरे ग्रहों पर विजय प्राप्त करना, तृषा = प्यास निष्णात = पारंगत, विधु = चन्द्रमा।

प्रसंग – प्रस्तुत पंक्तियां राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर द्वारा रचित प्रसिद्ध प्रबन्धकाव्य 'कुरूक्षेत्र' के छठे सर्ग से ली गई हैं। इस रचना में कवि ने वर्तमान युग में विश्वव्यापी युद्ध और शांति की समस्या पर गहन विचार किया है। आज का मानव वर्तमान वैज्ञानिक उन्नति से उकता गया है, उसे अपनी उपलब्धियां छोटी एवं तुच्छ लगने लगी हैं। वह इस क्षेत्र में और ऊँची उड़ान भरना चाहता है।

व्याख्या – विज्ञान के वर्तमान युग में मनुष्य की बुद्धि की सांसे घुटने लगी हैं। उसके लिए यह दुनिया छोटी पड़ती जा रही है। उसे और अधिक व्यापक संसार तथा इससे भी अधिक विस्तृत नभ की आवश्यकता है। आज के मनुष्य ने इस धरती के तो सारे राज जान लिए हैं। अब वह अन्य ग्रहों – उपग्रहों पर विजय पाने की अभिलाषा करता है। वैज्ञानिक उन्नति में पारंगत मनुष्य अब मंगल और चन्द्र ग्रहों पर अपना अधिकार जमाना चाहता है। अब उसकी मंगल और चन्द्र–विजय अभियान की तैयारी है।

विशेष–

1. कवि भविष्य – द्रष्टा होता है। संभवतः दिनकर जी ने बहुत वर्ष पहले ही चन्द्र एवं मंगल ग्रहों पर विजय – अभियान का स्वप्न संजो लिया था।
2. तत्सम एवं तद्भव शब्दों के मंजुल – मेल से भावाभिक्ति में सम्प्रेषणीयता आ गई है।
3. अनुप्रास, रूपक एवं मानवीकरण अलंकारों का सुन्दर संयोजन हुआ है।
4. मनुष्य की ज्ञान – पिपासा का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण देखते ही बनता है।

वह मनुज, ब्रह्माण्ड का सबसे सुरम्य प्रकाश,
कुछ छिपा सकते न जिससे भूमि या आकाश।
यह मनुज, जिसकी शिखा उद्दाम;
कर रहे जिसको चराचर भक्तियुक्त प्रणाम।
यह मनुज, जो सृष्टि का श्रृंगार;
ज्ञान का, विज्ञान का, आलोक का आगार।

शब्दार्थ– मनुज = मनुष्य, ब्रह्माण्ड = सृष्टि, सुरम्य = सुन्दर, शिखा = चोटी, उद्दाम = प्रचण्ड, चराचर = जड़ चेतन सृष्टि = संसार, भक्तियुक्त = भक्ति के साथ, श्रृंगार = सौन्दर्य, आलोक = प्रकाश, आगार = भण्डार।

प्रसंग – प्रस्तुत पंक्तियाँ राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर द्वारा रचित प्रसिद्ध प्रबन्धकाव्य 'कुरूक्षेत्र' के छठे सर्ग से ली गई हैं। इस कृति में कवि ने समसामयिक विश्वव्यापी युद्ध और शांति की ज्वलन्त समस्या पर बेबाक विचार किया है। कवि की मान्यता है कि आज का मानव सृष्टि का सिरमौर है। सर्वत्र उसी की कीर्ति की किरणें विकीर्ण हो रही हैं। उसका ज्ञान अपरिमित है। सब उसके सामने

नतमस्तक हैं।

व्याख्या – आज मनुष्य संसार का सुन्दरतम प्राणी है। उसके ज्ञान की ज्योति से सारा संसार जगमगा रहा है। भूमण्डल एवं अन्तरिक्ष का कोई रहस्य उससे छुपा हुआ नहीं है। आज मनुष्य उन्नति के सर्वोच्च शिखर पर सुशोभित है। संसार के जड़–चेतन सभी पदार्थ उसको सादर नमस्कार करते हैं। अपने बुद्धिकौशल से ज्ञान और विज्ञान का अजस स्रोत होने के कारण वह समस्त संसार की शोभा बढ़ा रहा है।

विशेष–

1. मनुष्य को महिमामण्डित करते हुए कविवर सुमित्रानन्दन पन्त ने भी तो यही कहा है – सुन्दर हैं सुमन, विगह सुन्दर।

   मानव तुम सब से सुन्दरतम।।

2. सहज, सरल भाषा भावानुकूल है।

3. अनुप्रास, रूपक एवं मानवीकरण अलंकारों का सुष्ठु प्रयोग हुआ हैं

4. शब्द–चयन में कवि ने विशेष सूझबूझ का परिचय दिया है।

   पर, सको सुन तो सुनो, मंगल–जगत के लोग!
   तुम्हें छूने का रहा जो जीव कर उद्योग,
   वह अभी पशु है; निरा पशु, हिंस्र, रक्त–पिपासु,
   बुद्धि उसकी दानवी है स्थूल की जिज्ञासु।
   कड़कता उसमें किसी का जब कभी अभिमान,
   फूंकने लगते सभी हो मत्त मृत्यु–विषाण।

शब्दार्थ– मंगल – जगत = मंगल ग्रह, उद्योग = परिश्रम, हिंसा = खूंखार, निरा = पूरा, रक्त - पिपासु = खून का प्यास, दानवी = राक्षसी, स्थूल = मोटा, जिज्ञासु = जानने का इच्छुक, अभिमान = घमण्ड, मत्त = मस्त, मृत्यु–विषाण = मौत का साज।

प्रंसग – प्रस्तुत पंक्तियां राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर द्वारा रचित प्रसिद्ध प्रबन्धकाव्य 'कुरूक्षेत्र' के छठे सर्ग से ली गई हैं। इस कृति में कवि ने विश्वव्यापी युद्ध और शांति की ज्वलन्त समस्या पर गंभीरता पूर्वक विचार किया है। इन पंक्तियों में मनुष्य की खूंखार राक्षसी प्रवृत्ति का प्रतिपादन किया गया है। मनुष्य पृथ्वी पर अपने साम्राज्य से सन्तुष्ट नहीं है, वह तो मंगल ग्रह पर भी धावा बोलने के लिए कटिबद्ध है।

व्याख्या – आज का मनुष्य अपनी बौद्धिक उन्नति के नशे में चूर है वह मंगल– ग्रह पर बसने वाले लोगों को ललकार कर कह रहा है कि सावधान हो जाओ अब हम मंगल ग्रह पर अपना अधिकार जमाने वाले हैं। खूंखार पशु की भाँति रक्त पीने को लालायित हैं। उसकी राक्षसी बुद्धि बड़ी–बड़ी वस्तुओं को जानने के लिए बेकरार है। वह अपने घमण्ड में चूर होकर मृत्यु के ताण्डव का शंखनाद करने के लिए उद्धत है।

विशेष –

1. यहां कवि ने मनुष्य की हिंसक पाशविक प्रवृत्ति को उद्‌घाटित किया है।
2. सरल भाषा भावानुकूल है।
3. सटीक शब्द– चयन कवि के व्यापक ज्ञान का परिचायक है।
4. अनुप्रास एवं मानवीकरण अलंकारों का सुष्ठु प्रयोग हुआ है।

यह मनुज ज्ञानी, शृगालों, कुक्कुरों से हीन
हो, किया करता अनेकों क्रूर कर्म मलीन।
देह ही लड़ती नहीं, हैं जूझते मन–प्राण,
साथ होते ध्वंस में इसके कला–विज्ञान।
इस मनुज के हाथ से विज्ञान के भी फूल,
वज्र होकर छूटते शुभ धर्म अपना भूल।

शब्दार्थ– मनुज = मनुष्य, शृगालों = गीदड़ों, कुक्कुरों = कुत्तों, क्रूर = बर्बर, मलीन = गन्दे, बुरे, देह = शरीर, जूझते = लड़ते, ध्वंस = विनाश, वज्र = कठोर।

प्रसंग – प्रस्तुत पंक्तियां राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर द्वारा रचित प्रसिद्ध प्रबन्धकाव्य 'कुरूक्षेत्र' के छठे सर्ग से ली गई हैं। इस काव्यकृति में साम्प्रतिक संसार की युद्ध और शांति सम्बन्धी ज्वलन्त समस्या पर गंभीरतापूर्वक विचार किया गया है। यहाँ बताया गया है कि आधुनिक नर पिशाच बन गया है। वह पशुओं से भी अधिक हिंसक हो कर सब कुछ नष्ट कर देना चाहता है।

व्याख्या – कवि कहता है कि आज का तथाकथित बुद्धि–मान मनुष्य गीदड़ तथा कुत्तों से भी नीच बन गया है। वह गन्दे से गन्दे नीचतापूर्ण बर्बर कार्य करने में लगा हुआ हैं। वह शरीर से ही नहीं अपितु मन – वचन– कर्म से कला और विज्ञान की उन्नति पर पानी फेरने में जुटा हुआ है। मनुष्य ने वैज्ञानिक विकास से मानवता की सेवा के लिए जो आविष्कार किए थे उन्हें अब विध्वंशकारी अस्त्रों के रूप में मानवता को नष्ट करने के लिए प्रयुक्त किया जा रहा है। आज का मनुष्य विज्ञान के वरदान को अभिशाप बनाने पर तुला हुआ है।

विशेष –

1. आज का धर्मविहीन मनुष्य वैज्ञानिक आविष्कारों को मानव – कल्याण की अपेक्षा मानवता को नष्ट करने के लिए प्रयुक्त कर रहा है।
2. सटीक शब्द –चयन से भावाभिव्यक्ति जीवन्त बन पड़ी है।
3. भाषा सरल एवं प्रभावात्मक है।
4. अनुप्रास, रूपक एवं विशेषोक्ति अलंकारों का प्रयोग हुआ है।

यह मनुज, जो ज्ञान का आगार!

यह मनुज, जो सृष्टि का शृंगार!

नाम सुन भूलो नहीं, सोचो–विचारो कृत्य;

यह मनुज, संहार–सेवी वासना का भृत्य।

छद्म इसकी कल्पना, पाषण्ड इसका ज्ञान,

यह मनुष्य मनुष्यता का घोरतम अपमान।

शब्दार्थ– आगार = भण्डार, सृष्टि = संसार, शृंगार = शोभा, कृत्य = कार्य, संहार – सेवी = मारकाट मचाने वाली, वासना = इच्छा, प्रवृति, भृत्य = सेवक, छद्म = छुपी हुई, कपटपूर्ण, पाषण्ड = पाखण्ड, घोरतम = भयंकर, अपमान = अनादार।

प्रसंग– यह पद्यांश राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर द्वारा रचित प्रसिद्ध प्रबन्धकाव्य 'कुरूक्षेत्र' के छठे सर्ग से अवतरित है। इस कृति में दिनकर जी ने विश्वव्यापी युद्ध और शांति की ज्वलन्त समस्या पर अपने विचार व्यक्ति किए हैं। यहां बताया गया है कि संसार की शोभा कहा जाने वाला आज का मनुष्य पूरा पाखण्डी एवं मानवता के नाम पर कलंक है। वह अपने कर्त्तव्य को पूरी तरह भूल गया हैं।

व्याख्या – आज का मानव जो अमित ज्ञान का भण्डार है तथा जो संसार को सुशोभित करता है, उसके नाम पर ध्यान मत दो, यह सोचो कि वह काम कैसे करता है। अब वह पूरी तरह विनाशकारी प्रवृत्तियों का सेवक बन गया है। अब उसके विचार छल – कपट से भरे हैं तथा उसका ज्ञान थोथा हो गया है। अब उसे मानव कहना, मानवता का भयंकर अपमान है, निरादर है। भावार्थ यह है कि आज का मनुष्य, जाति, धर्म सम्प्रदायों की केंचुली धारण करके मानवता के मूलमंत्र को भूल बैठा है। यह मानवता का घोर तिरस्कार नहीं, तो और क्या है?

विशेष –

1. यहां कवि ने अधुनातन मानव के दंभपूर्ण आचरण का कच्चा चिट्ठा खोलकर रख दिया है।
2. साम्प्रतिक मनुष्य भोग–विलास और विध्वंसकारी, मानवता – विरोधी गतिविधियों में लगा हुआ है।
3. सटीक शब्द – चयन से भावाभिव्यक्ति सशक्त हो गई है।
4. अनुप्रास, उल्लेख एवं विषम अलंकारों का सुष्ठु प्रयोग हुआ है।

'व्योम से पाताल तक सब कुछ इसे है ज्ञेय।'

पर, न यह परिचय मनुज का, यह न उसका श्रेय।

श्रेय उसका बुद्धि पर चैतन्य उर की जीत;

श्रेय मानव की असीमित मानवों से प्रीत;

एक नर से दूसरे के बीच का व्यवधान

तोड़ दे जो, है वही ज्ञानी, वही विद्वान,

और मानव भी वही।

शब्दार्थ – व्योम = आकाश, ज्ञेय = मालूम, ज्ञात, श्रेय = योगदान, चैतन्य = प्रबुद्ध, उर = हृदय, असीमित =

असंख्य, अपरिमित, प्रीत = मुहब्बत, प्यार, व्यवधान = रूकावट, अन्तर।

प्रसंग – प्रदत्त पद्यांश राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर द्वारा रचित प्रसिद्ध प्रबन्धकाव्य 'कुरूक्षेत्र' के षष्ठ सर्ग से उद्धृत किया गया है। इस कृति में कवि ने विश्वव्यापी युद्ध और शांति की ज्वलन्त समस्या पर बड़ी गंभीरता से विचार किया है। यहां कवि ने बताया है कि मानव वह नहीं है जिसने आकाश से पाताल तक के अपरिमित ज्ञान को पा लिया है। वस्तुतः प्रबुद्ध मानव तो वह है जिसने मनुष्य – मनुष्य के बीच के अन्तर को पाटकर असंख्य लोगों को गले लगाया है, उनका प्यार पाया है।

व्याख्या – मनुष्य ने अपनी वैज्ञानिक प्रगति के बल पर आकाश से पाताल तक पृथ्वी के सारे रहस्य जान लिए; परन्तु फिर भी यह उसका सही परिचय नहीं है, क्योंकि मनुष्य की सही पहचान है उसकी संवेदनशीलता, देश–धर्म और जाति–पाति से ऊपर उठकर असंख्य लोगों का प्यार प्राप्त करना। मनुष्य– मनुष्य के बीच के अन्तर को मिटाना। जो व्यक्ति विभाजनकारी संकीर्ण दीवारों को तोड़ कर जन – जन को गले लगाए, उन्हें मानवता का पाठ पढ़ाए, वही मनुष्य विद्वान है, वही पण्डित है और मानव कहलवाने का अधिकारी है। सर्व–जन हिताय कल्याणकारी कार्यों में तल्लीन रहने वाला मनुष्य ही सच्चे अर्थों में मनुष्य है।

विशेषः–

1. यहाँ कवि ने सही अर्थ में मानव की पहचान बताई है। केवल बुद्धिबल से सम्पन्न व्यक्ति को मानव नहीं कहा जा सकता। वस्तुतः मानव तो वही है जो पूर्णतः मानवता को समर्पित हो।
2. भाषा सरल, सहज एवं भावानुकूल है।
3. सटीक शब्द–चयन से अभिव्यक्ति में रवानी आ गई है।
4. अनुप्रास एवं उल्लेख अलंकारों का मणिकांचन संयोग है।

जो जीव बुद्धि–अधीर

तोड़ना अणु ही, न इस व्यवधान का प्राचीर;

वह नहीं मानव; मनुज से उच्च, लघु या भिन्न

चित्र–प्राणी है किसी अज्ञात ग्रह का छिन्न।

स्यात्, मंगल या शनिश्चर लोक का अवदान,

अजनबी करता सदा अपने ग्रहों का ध्यान।

शब्दार्थ– बुद्धि–अधीर = अस्थिर बुद्धि वाला, व्यवधान = बाधा, प्राचीर = दीवार, उच्च = ऊँचा, लघु = छोटा, भिन्न = अलग, चित्र–प्राणी = मनुष्य का चित्र, अज्ञात = अनजाना, ग्रह = नक्षत्र, छिन्न = टूटा हुआ, स्यात् = शायद, अवदान = देन, सौगात।

प्रंसग – प्रस्तुत पंक्तियां हमारे पाठ्यक्रम में निर्धारित प्रबन्धकाव्य 'कुरूक्षेत्र' के छठे सर्ग से ली गई हैं। इस कृति के रचयिता राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर हैं। यहाँ बताया गया है कि जो अस्थिर–बुद्धि व्यक्ति ऊँच–नीच के आधार पर मानव – के बीच अन्तर करता है, वह मानव कहलाने का अधिकारी नहीं है।

व्याख्या – कवि कहता कहता है कि जिस व्यक्ति ने विज्ञान के बल पर अणु–परमाणु का ज्ञान प्राप्त कर

लिया, मनुष्य के मार्ग में आने वाली बाधाओं का निराकरण कर दिया और मनुष्य–मनुष्य के बीच वर्ग–भेद की खाई खोद दी, वह व्यक्ति मानव नहीं कहला सकता। वह तो किसी अजाने ग्रह, संभवतः मंगल या शनि ग्रह के मनुष्य का चित्र हो सकता है। कवि की धारणा है कि ऐसा संवेदनहीन प्राणी मंगल अथवा शनि से रास्ता भटक कर पृथ्वीलोक में आ गया है। वह अपरिचित लोक का आदर्शहीन व्यक्ति मानव कहलाने का अधिकारी नहीं है।

विशेष :–

1. कवि कहना चाहता है कि संवेदना–शून्य व्यक्ति प्राणी तो है पर उसे मानव नहीं कहा जा सकता क्योंकि मानव तो वह है जिसके हृदय में मानवता के प्रति प्यार हो, जो ऊँच – नीच की संकीर्ण दीवारों को तोड़ चुका हो।
2. सटीक शब्द–चयन से अभिव्यक्ति में प्रभविष्णुता आई है।
3. भाषा सरल, सहज एवं भावानुकूल है।
4. अनुप्रास, उल्लेख एवं अपह्नुति अलंकारों का सुष्ठु प्रयोग हुआ है।

रसवती भू के मनुज का श्रेय,
यह नहीं विज्ञान, विद्या–बुद्धि यह आग्नेय;
विश्व–दाहक, मृत्यु–वाहक, सृष्टि का संताप,
भ्रान्त पथ पर अन्ध बढ़ते ज्ञान का अभिशाप।
भ्रमित प्रज्ञान का कुतुक यह इन्द्रजाल विचित्र,
श्रेय मानव के न आविष्कार ये अपवित्र।

शब्दार्थ– रसवती = रस से परिपूर्ण, भू = धरती, श्रेय = अभीष्ट, आग्नेय = आग बरसाने वाली, विश्व–दाहक = संसार को जलाने वाली, मृत्यु–वाहक = मौत की वाहिका, सृष्टि = संसार, संताप = दुःख, भ्रान्त = भटका हुआ, पथ = रास्ता, भ्रमित = भटकी हुई, प्रज्ञा = बुद्धि, कुतुक = तमाशा, इन्द्रजाल = जादू, विचित्र = अनोखा, अपवित्र = अशुद्ध, भ्रष्ट।

प्रसंग – प्रस्तुत पद्यांश राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर द्वारा रचित प्रसिद्ध प्रबन्धकाव्य 'कुरूक्षेत्र' के छठे सर्ग से उद्धृत किया गया हैं। इस कृति में दिनकर जी ने विश्वव्यापी युद्ध और शांति की ज्वलन्त समस्या पर गंभीरता से विचार किया है। यहाँ कवि कह रहा है कि विश्व में तबाही लाने वाले वैज्ञानिक आविष्कार रस से परिपूर्ण पृथ्वी के लिए घातक हैं। मौत का ताण्डव करने वाले ये आविष्कार भ्रष्ट बुद्धि की पैदावार हैं।

व्याख्या – कवि का कहाना है कि आग बरसाने वाले अस्त्र – शस्त्र भ्रष्ट बुद्धि की देन हैं, जो रसमय धरती को दग्ध करके महानाश को आमंत्रित करते हैं। यह सब पथभ्रष्ट मतान्ध लोगों की दुर्बुद्धि का परिणाम है। संसार को दुःख के समुद्र में धकेलने का ऐसा दुस्साहस कोई संवेदनशील मनुष्य नहीं कर सकता। भ्रष्ट–बुद्धि वाले लोग इसे जादू का खेल समझते हैं। पर बर्बरतापूर्ण ऐसा निकृष्ट एवं घिनौना कार्य करने के विषय में श्रेष्ठ मानव सोच भी नहीं सकता।

विशेष –

1. कवि की धारणा है कि वैज्ञानिक आविष्कार मानवता के लिए वरदान की अपेक्षा अभिशाप सिद्ध हो रहे हैं।

2. सटीक शब्द–चयन भावाभिव्यक्ति के अनुरूप है।

3. सरल, सहज भाषा भावों की अनुगामिनी है।

4. अनुप्रास, रूपक एवं अपह्नुति अलंकरों का सुष्ठु, प्रयोग हुआ है।

सावधान, मनुष्य! यदि विज्ञान है तलवार,
तो इसे दे फेंक, तज कर मोह, स्मृति के पार।
हो चुका है सिद्ध, है तू शिशु अभी नादान;
फूल–काँटों की तुझे कुछ भी नहीं पहचान।
खेल सकता तू नहीं ले हाथ में तलवार;
काट लेगा अंग, तीखी है बड़ी यह धार।

शब्दार्थ – मोह = ममता, स्मृति = याद, सिद्ध = प्रमाणित, शिशु = बच्चा, नादान = भोला–भाला, अभनिज्ञ, तीखी = तेज

प्रसंग – प्रस्तुत पंक्तियां राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर द्वारा रचित प्रसिद्ध प्रबन्ध काव्य 'कुरूक्षेत्र' के छठे सर्ग से उद्धृत की गई हैं। इस कृति में कवि ने विश्वव्यापी युद्ध और शांति की ज्वलन्त समस्या पर अपने बहुमूल्य विचार व्यक्त किए हैं। इन पंक्तियों में कवि ने मनुष्य को वैज्ञानिक आविष्कारों के प्रति सचेत करते हुए इन्हें त्याग देने का परामर्श दिया है।

व्याख्या – कवि कहता है कि हे मनुष्य वैज्ञानिक आविष्कारों का प्रयोग सोच–समझ कर करना। यदि अस्त्र – शस्त्रों के रूप में ये आविष्कार तलवार की तरह घातक हों तो इन्हें फेंक देना ही अच्छा है। मनुष्य को अपने पुराने दिन याद करके ऐसे घातक हथियारों से दूर रहना चाहिए। इन अस्त्र –शस्त्रों के प्रयोग से यह सिद्ध हो चुका है कि तू इनका प्रयोग करने में अभी निपुण नहीं हुआ हैं। तुम्हारी स्थिति उस अनभिज्ञ भोले – भाले बालक जैसी है जिसे फूल और कांटों की, अर्थात् अच्छे और बुरे की पहचान नहीं है। ऐसी स्थिति में तू विज्ञान रूपी तलवार से मत खेल, इसकी धार बड़ी पैनी है। इससे कहीं तू अपने अंग ही न कटवा बैठे। भावार्थ यह है कि वैज्ञानिक आविष्कार मानवता के लिए अभिशाप सिद्ध हो रहे हैं।

विशेष :–

1. कवि का आशय है कि विज्ञान मानवता के लिए वरदान नहीं अभिशाप सिद्ध हो रही है। मनुष्य स्वयं अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मार रहा है।

2. सटीक शब्द – चयन से अभिव्यक्ति सशक्त हो गई है।

3. भाषा सरल, सहज एवं भावनुकूल है।

4. प्रतीकों से युक्त व्यासात्मक शैली बहुत प्रभावपूर्ण है।

रसवती भू के मनुज का श्रेय,

यह नहीं विज्ञान कटु, आग्नेय।

श्रेय उसका प्राण में बहती प्रणय की वायु,

मानवों के हेतु अर्पित मानवों की आयु।

शब्दार्थ– रसवती = रस से परिपूर्ण, भू = धरती, मनुज = मानव, श्रेय = साध्य, आग्नेय = आग बरसाने वाला, घातक, प्रणय = प्रेम, कटु = कड़वा, हेतु = के लिए अर्पित = अर्पण किया हुआ, प्रदत्त।

प्रसंग – प्रस्तुत पद्यांश राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर द्वारा रचित प्रसिद्ध प्रबन्धकाव्य 'कुरूक्षेत्र' के छठे सर्ग से उद्धृत है। इसमें कवि ने समसामयिक संसार में व्याप्त युद्ध और शांति की ज्वलन्त समस्या पर गहन चिन्तन किया है। यहाँ कवि कहना चाहता है कि विज्ञान ने जो विध्वंसकारी अस्त्र–शस्त्र खोजे हैं, वे मनुष्य के लिए अभीष्ट नहीं हैं। मनुष्य के लिए तो पारम्परिक सौहार्द एवं संवेदना ही अभीप्सित है।

व्याख्या – कवि कहता है कि इस रस से परिपूर्ण धरती पर बसने वाले मनुष्य के लिए विध्वंशकारी अस्त्र–शस्त्रों की आवश्यकता नहीं है। उसे तो लोगों के उस प्रेम की आवश्यकता है जो उनके जीवन में आनन्द को उंड़ेल दे, सौहार्द का संचार करे। मनुष्य, मनुष्य के लिए जिए। मनुष्य के जीवन का लक्ष्य मानव कल्याण हो, न कि विध्वंशक विज्ञान के हथियार।

विशेषः–

1. विज्ञान के विध्वंसकारी ताण्डव को देखकर कवि क्षुब्ध है। वह चाहता है कि मनुष्य, मनुष्य के काम आए, लोगों में पारस्परिक सौहार्द एवं संवेदना हो।
2. सटीक शब्द – चयन भावभिव्यक्ति में सहायक सिद्ध हुआ है।
3. भाषा भावानुकूल सहज एवं सरल है।
4. अनुप्रास रूपक तथा अपह्नुति अलंकारों का सुष्ठु प्रयोग हुआ है।
5. कवि ने 'प्यार बांटते चलो' की भावना को बुलन्द किया है।

श्रेय उसका आँसुओं की धार,

श्रेय उसका भग्न वीणा की अधीर पुकार।

दिव्य भावों के जगत् में जागरण का गान,

मानवों का श्रेय आत्मा का किरण–अभियान।

शब्दार्थ– श्रेय = साध्य, अभीष्ट, भग्न वीणा = टूटा हुआ हृदय, अधीर = व्याकुल, दिव्य = अलौकिक, जागरण = जागृति, किरण – अभियान = प्रकाश फैलाने का प्रयास।

प्रसंग – प्रस्तुत पंक्तियां राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर द्वारा लिखित प्रसिद्ध प्रबन्धकाव्य 'कुरूक्षेत्र' के छठे सर्ग से उद्धृत की गई हैं। इस कृति में कवि ने विश्वव्यापी युद्ध और शांति की ज्वलन्त समस्या पर गहन चिन्तन किया है। इन पंक्तियों में कवि ने मनुष्य के अन्तर्मन की उदात्त भावनाओं – दया, ममता, करूणा, संवेदना आदि को रेखांकित करने का प्रयास किया है।

व्याख्याः– भारतीय संस्कृति में दया, करूणा, संवेदना आदि मानवीय मूल्यों का सर्वाधिक महत्त्व है। कवि इस

तथ्य को रेखांकित करते हुए कहता है कि आज मनुष्य के दिल में करूणा का संचार होना चाहिए। जिन लोगों की जीवन–वीणा के तार टूट गए हैं अर्थात् उनके हृदय विदीर्ण हो गए हैं, उन्हें सहानुभूति की आवश्यकता है। लोगों के दिल में आनन्द की उमंगें जागृत करने के लिए अलौकिक भावों का प्रस्फुरण आवश्यक है। मनुष्य का ध्येय जन – जन के हृदय में प्रेम की ज्योति जलाना होना चाहिए। आत्मा का आनन्द ही मनुष्य की सर्वोत्तम उपलब्धि है।

विशेष –

1. मनुष्य के जीवन का लक्ष्य वैज्ञानिक आविष्कारों पर इतराना नहीं बल्कि दीन–दुखियों के आँसू पोंछकर उन्हें प्रेमपूर्वक गले लगाना है।
2. सरल, तरल भाषा भावानुकूल है।
3. सटीक शब्द–चयन से भावाभिव्यक्ति सशक्त हुई है।
4. अनुप्रास, प्रतीक विधान, एवं मानवीकरण अलंकारों का सुष्ठु प्रयोग हुआ है।

यजन, अर्पण, आत्मसुख का त्याग,

श्रेय मानव का तपस्या की दहकती आग।

बुद्धि–मन्थन से विनिर्गत श्रेय वह नवनीत,

जो करे नर के हृदय को स्निग्ध, सौम्य, पुनीत।

शब्दार्थ– यजन = यज्ञ आदि अनुष्ठान, अर्पण = समर्पण, आत्मसुख = अपनी आत्मा का सुख, दहकती = प्रचण्ड, बुद्धि–मंथन = मनोयाग से चित्तन, विनिर्गत = निकला हुआ, नवनीत = मक्खन, स्निग्ध = मृदुल, सौम्य = सुन्दर, पुनीत = पवित्र, निर्मल।

प्रसंग – प्रस्तुत पद्यांश राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर द्वारा प्रणीत प्रसिद्ध प्रबन्धकाव्य 'कुरूक्षेत्र' के छठे सर्ग से उद्धृत किया गया है। इस कृति में आधुनिक युग की विश्वव्यापी युद्ध एवं शांति की ज्वलन्त समस्या पर बड़ी गंभीरता पूर्वक चिन्तन किया गया है। इन पंक्तियों में कवि ने मानव–कल्याण की उदात्त भावनाओं को जागृत करने का सन्देश दिया है।

व्याख्या – भारतीय संस्कृति का केन्द्र – बिन्दु मानव – कल्याण है, जिसके लिए यज्ञादि अनुष्ठान, समर्पण, अपने सुखों का त्याग आवश्यक है। मनुष्य अपने तप–त्याग एवं बलिदान के माध्यम से लोक – कल्याण में सफल हो सकता है। वह अपने विवेक से ऐसा मक्खन प्राप्त करे जिससे मनुष्य का हृदय मृदुल, सुकोमल, सुन्दर और पवित्र हो जाए। भावार्थ यह है कि मनुष्य अपने हृदय में उन उदात्त भावों को जागृत करे, जिनसे जन – जन का कल्याण है। 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' का मूल – मंत्र सबकी हृदय – तंत्री को झंकृत कर दे।

विशेष –

1. दिनकर जी ने 'स हितं साहित्य' के सिद्धान्त को अपनी कविता में ढाल कर उसे सही सिद्ध कर दिखाया है।
2. सटीक शब्द – चयन भावाभिक्ति में सहायक सिद्ध हुआ है।
3. भाषा भावानुकूल सरल एवं तरल है।

4. अनुप्रास एवं रूपक अलंकरों का सुन्दर प्रयोग है।

"अपने लिए जिए तो क्या जिए।

ऐ दिल जी तू जमाने के लिए।।"

मूल – मंत्र का उद्घोष प्रदत्त पंद्याश में सुनाई पड़ता है।

श्रेय वह विज्ञान का वरदान,

हो सुलभ सबको सहज जिसका रुचिर अवदान।

श्रेय वह नर–बुद्धि का शिवरूप आविष्कार,

ढो सके जिससे प्रकृति सबके सुखों का भार।

मनुज के श्रम के अपव्यय की प्रथा रुक जाय,

सुख–समृद्धि–विधान में नर के प्रकृति झुक जाय।

शब्दार्थ– सुलभ = प्राप्त, सहज = आसानी से, रूचिर = सुन्दर, अवदान = उपहार, नर – बुद्धि = मनुष्य की बुद्धि, शिवरूप = कल्याणकारी, श्रम = मेहनत, अपव्यय = दुरूपयोग, प्रथा = परम्परा, सुख–समृद्धि – विधान = सुख और उन्नति का निर्माण।

प्रसंग– प्रस्तुत पंक्तियां राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर द्वारा रचित प्रसिद्ध प्रबन्धकाव्य 'कुरूक्षेत्र' के छठे सर्ग से उद्धृत की गई हैं। इस कृति में कवि ने विश्वव्यापी युद्ध और शांति की ज्वलन्त समस्या पर गहन चिन्तन किया है। यहां कवि बताना चाहता है कि विज्ञान का उत्कर्ष तभी जीवनोपयोगी सिद्ध हो सकता है जब वह मानव को सुख– सम्पन्न बनाने के लिए कारगर सिद्ध हो।

व्याख्या– कवि कहता है कि विज्ञान ने आशातीत उन्नति की है किन्तु विज्ञान की वह उन्नति तभी श्रेयस्कर हो – सकती है जब उसके लाभ जन –जन को प्राप्त हों। यदि मनुष्य अपनी सद्बुद्धि से विज्ञान के आविष्कारों को लोक–कल्याण के लए प्रयुक्त करे, जिससे प्रकृति प्रत्येक प्राणी के लिए सुख के साधन जुटाए। मनुष्य के परिश्रम का दुरूपयोग न हो। अर्थात् वैज्ञानिक आविष्कार मानवता की भलाई के लिए हों, न कि उसकी तबाही के लिए। प्रकृति मनुष्य की सुख – सुविधा के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहे। कवि के कहने का तात्पर्य यह है कि विज्ञान सृष्टि संहारक अस्त्र–शस्त्रों का आविष्कार न करे, जिससे मनुष्य प्राकृतिक सम्पदा से पूर्णतः लाभान्वित हो सके।

विशेष :–

1. विज्ञान के आविष्कार मानव–कल्याण के लिए हों, उनसे प्रकृति की सुषमा को कोई क्षति न हो।
2. सटीक शब्द–चयन से अभिव्यक्ति में निखार आ गया है।
3. भाषा सरल, सहज भावानुकूल है।
4. अनुप्रास, रूपक एवं उल्लेख अलंकारों का सुन्दर समन्वय है।

श्रेय होगा मनुज का समता–विधायक ज्ञान,

स्नेह–सिंचित न्याय पर नव विश्व का निर्माण।

एक नर में अन्य का निःशंक, दढ़ विश्वास,

धर्मदीप्त मनुष्य का उज्ज्वल नया इतिहास–

स्मर, शोषण, ह्रास की विरुदावली से हीन,

पष्ठ जिसका एक भी होगा न दग्ध, मलीन।

मनुज का इतिहास, जो होगा सुधामय कोष,

छलकता होगा सभी नर का जहाँ संतोष।

शब्दार्थ– समता–विधायक = समानता लाने वाला, स्नेह – सिंचित = प्रेम से सींचा हुआ, नव = नए, विश्व = संसार, निर्माण = रचना, निःशंक = बिना सन्देह, दृढ़ = पक्का, धर्म–दीप्त = धर्म से प्रकाशित, उज्ज्वल = सुनहरी, समर = युद्ध, ह्रास = पतन, विरूदावली = गुणगान, दग्ध = जला हुआ, मलीन = मैला, सुधामय = अमृत से भरा, कोष = खजाना, संतोष = तृप्ति।

प्रसंग – प्रस्तुत पद्यांश राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर द्वारा रचित प्रसिद्ध प्रबन्धकाव्य 'कुरूक्षेत्र' के षष्ठ सर्ग से उद्धृत किया गया है। इस कृति में कवि ने विश्वव्यापी युद्ध एवं शांति की ज्वलन्त समस्या पर बड़ी गंभीरता से विचार किया है। प्रस्तुत पंक्तियों में कवि ने पारस्परिक प्रेम एवं समता की भावना को सुदृढ़ करने की कामना की है। यदि मनुष्य ऊँच – नीच की भावना को छोड़कर धर्म के मार्ग पर चले तो निश्चय ही नए इतिहास का निर्माण हो सकता है।

व्याख्या – कवि का विश्वास है कि मानवता का विकास तभी होगा जब मनुष्य की सोच समतावादी होगी। प्रेम से परिपूर्ण न्याय–व्यवस्था के आधार पर ही नए विश्व की रचना हो सकती है। इसके लिए लोगों का पारस्परिक निश्छल प्रेम तथा पक्का इरादा जरूरी है। यदि मनुष्य धर्म से आलोकित मार्ग पर चले तो निश्चय ही एक नए सुनहरी इतिहास का निर्माण हो सकता है। ऐसा इतिहास जिसमें युद्ध, अत्याचार, और पतन का कहीं नामोनिशान न हो, जिसका एक भी पन्ना किसी के कृत्रिम गुणगान से न सजा हो, जिसमें शोषण एवं निकृष्टता का कोई उल्लेख न हो। ऐसा इतिहास जो मनुष्य के सुधासिक्त क्रिया– कलापों से परिप्लावित होगा, जिस से सभी लोग सन्तुष्ट होंगे।

विशेषः–

1. यहां कवि ने एक ऐसे आदर्श समाज की स्थापना का स्वप्न संयोया है, जिसमें कोई किसी पर सन्देह न करे, सब लोग परस्पर प्रेम एवं सद्भावनापूर्वक रहें। ऐसा समाज अमृताचमन का आनन्द ले सकता है।
2. भाषा सरल सहज एवं भावानुकूल है।
3. सटीक शब्द – चयन से अभिव्यक्ति सशक्त हुई है।
4. अनुप्रास, रूपक, दीपक तथा उल्लेख अलंकारों का सुष्ठु प्रयोग सहज ही देखा जा सकता है।

युद्ध की ज्वर–भीति से हो मुक्त,

जब कि होगी, सत्य ही, वसुधा सुधा से युक्त।

श्रेय होगा सुष्ठु–विकसित मनुज का वह काल,

जब नहीं होगी धरा नर के रुधिर से लाल।

श्रेय होगा धर्म का आलोक वह निर्बन्ध,

मनुज जोड़ेगा मनुज से जब उचित सम्बन्ध।

शब्दार्थ – ज्वर = ताप, भीति = भय, मुक्त = स्वतंत्र, वसुधा = धरती, सुधा = अमृत, युक्त = परिपूर्ण, सुष्ठु = सुन्दर, मनुज = मानव, धरा = धरती, रूधिर = रक्त, नर = मनुष्य, आलोक = प्रकाश, निर्बन्ध = बाधा रहित, सम्बन्ध = रिश्ता।

प्रसंग – प्रस्तुत पंक्तियां राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर द्वारा रचित उनके प्रसिद्ध प्रबन्धकाव्य 'कुरूक्षेत्र' के छठे सर्ग से ली गई हैं। इस कृति में कवि ने वर्तमान युग में व्याप्त युद्ध और शांति की ज्वलन्त समस्या पर अपने विचार प्रस्तुत किए हैं। यहां कवि कामना करता है कि मनुष्य युद्ध की विभीषिका से मुक्त हो जाए। लोग परस्पर सौहार्दपूर्वक रहें, कहीं रक्तपात न हो, सर्वत्र खुशियों का चमन खिल उठे। लोग धर्म के मार्ग पर चल कर प्रेम – रज्जू से बन्ध जाएं।

व्याख्या : कवि सोचता है कि वह दिन कब आएगा जब यह धरती युद्ध की ज्वाला के भय से मुक्त हो जाएगी। युद्ध की दुर्दान्त ज्वाला से स्वतंत्र होने पर इस धरती पर अमृत की धारा बहने लगेगी। वह समय मनुष्य के विकास का स्वर्ण–युग होगा जब इस धरती पर मनुष्य, मनुष्य का खून नहीं बहाएगा। यह धरती युद्धों के कारण रक्तरंजित नहीं होगी। मनुष्य बिना किसी रोक–टोक के धर्म का मार्ग प्रशस्त करेगा। ऐसी स्थिति में लोगों के पारस्परिक सम्बन्ध अपने आप ही सुदृढ़ हो जाएंगे।

विशेष :–

1. कवि की निर्दिष्ट आदर्श सोच को इन शब्दों में संजोया जा सकता है:

   जिस दिन इस भू से दानवता और खुदगर्जी मिट जाएगी।

   उस दिन यह मानव नाचेगा, उस दिन यह धरती गाएगी।

2. सटीक शब्द–चयन से अभिव्यक्ति प्रभावात्मक बन पड़ी है।

3. भाषा सरल, सहज एवं भावानुकूल है।

4. अनुप्रास, रूपक और यमक अलंकारों का मणिकांचन संयोग देखते ही बनता है।

   साम्य की वह रश्मि स्निग्ध, उदार,

   कब खिलेगी, कब खिलेगी विश्व में भगवान?

   कब सुकोमल ज्योति से अभिसिक्त

   हो, सरस होंगे जली–सूखी रसा के प्राण?

शब्दार्थ– साम्य = समानता, रश्मि = किरण, स्निग्ध = मृदुल, कोमल, उदार = व्यापक, सुकोमल = मृदुल, मसृण, ज्योति = प्रकाश अभिसिक्त = सिंचित, सरस = रस से परिपूर्ण, रसा = धरती।

प्रसंग – प्रस्तुत पंक्तियां राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर द्वारा रचित प्रसिद्ध प्रबन्धकाव्य 'कुरूक्षेत्र' के छठे सर्ग से उद्धृत की गई हैं। इस कृति में कवि ने साम्प्रतिक विश्वव्यापी युद्ध और शांति की ज्वलन्त

समस्या पर विचार किया है। कवि को इस धरती पर समानता एवं प्रेम के सुन्दर फूल खिलने की चाहत है। अतः वह भगवान से पूछता है कि वह दिन कब आएगा जब युद्धों से दग्ध इस धरती के प्राणों में रस का संचार होगा।

व्याख्या– दिनकर जी धरती पर हुए रक्तपात से दुखी होकर परमात्मा से पूछते हैं कि हे भगवान! इस धरती पर समानता की शीतल वायु कब बहेगी, उदारता के कोमल भाव कब पनपेंगे। हे भगवान, यहां खुशियों के फूल कब खिलेंगे? युद्धों से मस्मीभूत इस पृथ्वी पर कब अमृत का संचार होगा, कब इस पर हरियाली सरसाएगी? मानव, मानव में समानता का भाव कब जागृत होगा।

विशेषः–

1. यहां कवि का मानवतावादी स्वर भास्वर हुआ है। वह चाहता है कि विश्व के सब लोग परस्पर प्रेम से रहें। ऊँच–नीच, अमीर–गरीब, गोरे–काले का भेद लोगों में न रहे।
2. शब्द – चयन विषयानुकूल है।
3. भाषा सरल, तरल एवं प्रभावात्मक है।
4. अनुप्रास एवं प्रश्न अलंकारों का सुष्ठु प्रयोग हुआ है।

'अपनी प्रगति जांचिए'

1. ..... में युद्ध और शांति की समस्या को उठाया गया है।
2. ..... कब जलेगा, विश्व में भगवान?
3. आज मनुष्य के हृदय में..... लहरा रही है।
4. यदि ..... का ज्ञान नहीं तो वैज्ञानिक उन्नति व्यर्थ है।

17.3 सारांश

कुरुक्षेत्र के इस सर्ग में कवि ने बताया है कि आज भी मनुष्य के मन में कुरुक्षेत्र चल रहा है। वैज्ञानिक आविष्कारों के बल पर विश्व के सब देश एक दूसरे को ध्वस्त करने पर तुले हुए हैं। शस्त्र–अस्त्रों की होड़ में विश्व युद्ध–स्थल में परिवर्तित होता जा रहा है। आज का संसार पहले वाला संवेदनशील संसार नहीं रहा। उसने प्रकृति के सभी उपादानों को अपनी बुद्धि के बल पर जीत लिया है। ग्रह–उपग्रह, आकाश–पाताल और पृथ्वी पर सर्वत्र उसका आधिपत्य है। वायु, अग्नि, वरुण आदि सब देवता उसकी मुट्ठी में हैं। कवि संसार की यह दारुण दशा देखकर बड़ा व्यग्र है।

कवि सोचता है कि वह दिन कब आएगा जब लोग युद्ध की आशंका से मुक्त होकर सौहार्दपूर्ण स्वतंत्र परिवेश में आनन्दपूर्वक जीवन व्यतीत कर सकेंगे। युद्धों से भस्मीभूत हुई इस पृथ्वी पर कब अमृत की धारा बहेगी। मानव, मानव में सौहार्द एवं समता के भाव कब जागृत होंगे। अपनी राक्षसी प्रवृत्ति को छोड़कर मानव कब देवत्व की ओर अग्रसर होगा?

17.4 मुख्य शब्दावली

ज्योति = प्रकाश

सरस	=	रस से परिपूर्ण
उद्दाम	=	प्रबल
मुष्टि	=	मुट्ठी
नव्य–नर	=	आधुनिक मानव
लघु गेह	=	छोटा घर
व्योम	=	आकाश
आगार	=	भण्डार

17.5 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर

1. कुरुक्षेत्र
2. धर्म का दीपक
3. उद्दाम भोग–लिप्सा
4. उद्देश्य या लक्ष्य

17.6 अभ्यास हेतु प्रश्न

1. धरती रक्त–रंजित क्यों हो गई है?
2. मनुष्य ने किन–किन देवताओं को अपना दास बना लिया है?
3. आजका मनुष्य किस ग्रह के लोगों को ललकार रहा है?
4. आधुनिक मानव की मुट्ठी में क्या सिमट कर आ रहा है?
5. मनुष्य सुख के चन्द पल कहां बिताना चाहता है?
6. अन्ततः कवि भगवान से क्या पूछता है?

17.7 आप ये भी पढ़ सकते हैं।

1.	डॉ0 रेणु व्यास,	दिनकर : सृजन और चिन्तन
2.	डॉ0 शंभुनाथ,	दिनकर : कुछ पुनर्विचार
3.	डॉ0 जयसिंह 'नीरद'	दिनकर के काव्य में परम्परा और आधुनिकता
4.	शिवसागर मिश्र	दिनकर : एक सहज पुरुष
5.	डॉ0 सावित्री सिन्हा	युगचारण दिनकर
6.	कामेश्वर शर्मा	दिग्भ्रमित राष्ट्रकवि
7.	डॉ0 सत्यकाम वर्मा	जनकवि दिनकर
8.	जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी	दिनकर : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

9.	डॉ0 पी0 आदेश्वरराव	दिनकर : वैचारिक क्रांति के परिवेश में
10.	डॉ0 छोटे लाल दीक्षित	दिनकर का रचना–संसार
11.	धर्मपाल सिंह	दिनकर का वीर काव्य
12.	निधि भार्गव	दिनकर–काव्य में क्रांतिमंत चेतना
13.	डॉ0 अश्विनी वशिष्ठ	दिनकर के काव्य में मानव–मूल्य
14.	डॉ0 सरला परमार	दिनकर की काव्यभाषा : शैलीवैज्ञानिक अध्ययन
15.	गोपालकृष्ण कौल	दिनकर सृष्टि और दृष्टि

इकाई 18 उत्तर छायावादी काव्य और दिनकर

इकाई की रूपरेखा

18.0 परिचय

18.1 इकाई के उद्देश्य

18.2 दिनकर की जीवनी एवं रचना संसार

18.2.1 दिनकर : जीवन परिचय

18.2.2 दिनकर : रचना संसार

18.3 दिनकर के काव्य की प्रवृत्तियां

18.3.1 उत्तर छायावादी काव्य

18.3.2 मानवतावादी चिन्तन

18.3.3 राष्ट्रीय चेतना

18.3.4 साम्यवाद का शंखनाद

18.3.5 गांधी दर्शन में आस्था

18.3.6 शोषितों की दीन–दशा का यथार्थ चित्रण

18.3.7 सत्ता से संघर्ष

18.3.8 आशावादी स्वर

18.3.9 भाग्यवाद का विरोध

18.4 सारांश

18.5 मुख्य शब्दावली

18.6 अपनी प्रगति जांचिए के उत्तर

18.7 अभ्यास हेतु प्रश्न

18.8 आप ये भी पढ़ सकते हैं

18.0 परिचय

'दिनकर' जी निश्चय ही हिन्दी साहित्य के आलोक–स्तम्भ दिवाकर हैं, जिनके काव्य की आभा से आधुनिक हिंदी साहित्य जगमगा रहा है। उन्होंने 1928–29 में विधिवत् साहित्य–सृजन के क्षेत्र में पदार्पण किया था। तब से लेकर वे जीवनपर्यन्त निरन्तर धारा–प्रवाह लिखते रहे। उनके काव्य में हमें जीवन के विविध आयाम परिलक्षित होते हैं। बचपन से ही संघर्षमय जीवन से दो–दो हाथ करते रहने के कारण उनके जीवन में आक्रोश एवं क्रांति का उद्घोष अपेक्षाकृत ऊँचे स्वर में सुनाई पड़ता है।

दिनकर के यौवन–काल में भारत की स्वतंत्रता का आन्दोलन पूरे देश में बड़े जोर–शोर से चल रहा था, जिसे उत्प्रेरित करने के लिए इनकी लेखनी भी आग में घी डालने का काम करने लगी।

आत्मविश्वास, कर्मठता, सामयिक प्रश्नों के प्रति जागरूकता चुनौती भरा आशावादी स्वर, उदात्त सांस्कृतिक दृष्टिकोण, प्रखर राष्ट्राभिमान आदि ऐसे तत्त्व हैं जो दिनकर को परम्परावादी कवियों से अलग करते हैं। वे सच्चे अर्थों में 'युगचारण' तथा जनकवि थे। राष्ट्रीय भावनाओं के ओजस्वी गायक दिनकर ने अपनी रचनाओं के माध्यम से सामाजिक चेतना एवं जनसाधारण का शंख फूंका है। उनमें निर्भीकता थी, स्पष्टवादिता थी। इसी लिए वे अपनी समस्त रचनाओं में युगीन स्थितियों के विरूद्ध तीव्र आक्रोश व्यक्त करते थे। पूंजीवादी शोषण व्यवस्था की धज्जियां उड़ा देते थे। वे विदेशी नृशंस शासकों को सिंहासन खाली करने के लिए कहते हैं। उन्हें विश्वास था खुद पर, अपने देश के बान्धवों पर। वे जानते थे कि एक–न–एक दिन आजादी मिल कर रहेगी और वह भी सामान्य जनता के कारण।

दिनकर के काव्य का पर्यवेक्षण करने पर पता चलता है कि उसमें आरम्भ से ही एक ओर तो उत्तेजना और आक्रोश भरी राष्ट्रीय एवं सामाजिक चेतना और दूसरी और 'सुन्दरता का आनन्द लेने की प्रवृत्ति, दोनों का सह–अस्तित्व है'।

18.1 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- दिनकर के जीवन के विविध आयामों से परिचित हो पाएंगे,
- दिनकर की रचना–प्रक्रिया से अवगत हो पाएंगे,
- दिनकर के द्वन्द्वात्मक चिन्तन की तह तक पहुँच पाएंगे,
- दिनकर के मानवतावादी विचारों की जानकारी ले पाएंगे,
- दिनकर की प्रगतिवादी एवं प्रगतिशील भावनाओं को जान पाएंगे,
- दिनकर के साहित्यिक अवदान की परख कर पाएंगे।

18.2 दिनकर की जीवनी एवं रचना–संसार

18.2.1 दिनकर : जीवन परिचय

राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर का जन्म 23 सितम्बर, 1908 को गाँव सिमरिया, जिला बेगूसराय, बिहार में हुआ। इनके पिता का नाम रवि सिंह तथा माता का नाम मनरूप देवी था। इनका परिवार कृषि–कार्य करके अपनी जीविका चलाता था। ये चार भाई–बहन थे। तीन भाई तथा एक बहन। इनका बचपन का नाम ननुआ था। जब ननुआ (रामधारी सिंह) दो वर्ष का ही था कि इनके पिता का स्वर्गवास हो गया। पिता के निधन के बाद इनके परिवार पर विपत्तियों का पहाड़ टूट पड़ा। इनकी माता ने जिस किसी तरह इनका पालन–पोषण किया। ये बड़े कुशाग्र बुद्धि थे। निर्धनता से लड़ते हुए, इन्होंने 1928 में मैट्रिक की परीक्षा पास की। तदुपरान्त सन् 1932 में पटना विश्वविद्यालय से बी. ए. आनर्स की उपाधि प्राप्त की।

इसके बाद ये एक विद्यालय में सरकारी नौकरी करने लगे तथा 1934 से 1947 तक इन्होंने बिहार सरकार की सेवा में सब रजिस्ट्रार और प्रचार विभाग के उपनिदेशक पदों पर कार्य किया। सन् 1950 से 1952 तक

मुजरफ्फरपुर कालेज में हिंदी के विभागाध्यक्ष रहे।

1952 में प्रथम राज्यसभा का गठन हुआ तब इन्हें राज्य सभा का सदस्य मनोनीत किया गया और ये 1964 तक पूरे 12 वर्ष राज्य सभा की शोभा बढ़ाते रहे। इनका स्वभाव बड़ा सौम्य था और ये मृदुभाषी थे, परन्तु जब कभी देश की अस्मिता की बात आती तो ये बेबाक टिप्पणी करने से नहीं चूकते। एक बार इन्होंने भारत के प्रधानमंत्री, पण्डित जवाहरलाल नेहरू पर कटाक्ष करते हुए संसद में चन्द पंक्तियां सुनाई तो देश में तूफान मच गया। ध्यान देने योग्य बात यह है कि राज्यसभा सदस्य के रूप में दिनकर का चुनाव पण्डित नेहरू ने ही किया था। इसके बावजूद, उन्होंने नेहरू की नीतियों पर प्रखर प्रहार किया –

देखने में देवता सदृश्य लगता है

बन्द कमरे में बैठकर गलत हुक्म लिखता है।

जिस पापी को गुण नहीं गोत्र प्यारा हो

समझो उसी ने हमें मारा है।।

नेहरू जी से इनकी प्रगाढ़ मित्रता थी। इनकी प्रसिद्ध पुस्तक 'संस्कृति के चार अध्याय' की भूमिका नेहरू जी ने ही लिखी थी। एक बार ये दोनों सदन से इकट्ठे ही निकल रहे थे तो नेहरू जी ठोकर खाकर गिरने लगे तो दिनकर जी ने उन्हें थाम लिया। नेहरू ने इनको शुक्रिया कहा तो इन्होंने तपाक से उत्तर दिया, "नेहरू जी, जब–जब सत्ता (राजनीति) लड़खड़ाती है तो सदैव साहित्य ही उसे संभालता है।"

सन् 1964 से 1965 तक ये भागलपुर विश्वविद्यालय के कुलपति रहे तथा 1965 से 1971 तक इन्होंने भारत सरकार में हिंदी सलाहकार तथा आकाशवाणी के निदेशक के रूप में कार्य किया।

इन्हें सन् 1959 में इनकी प्रसिद्ध साहित्यिक रचना 'संस्कृति के चार अध्याय; के लिए साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया। इसी वर्ष भारत सरकार ने इन्हें 'पद्म भूषण' की उपाधि से अलंकृत किया। इनकी श्रेष्ठ रचना 'उर्वशी' के लिए इन्हें ज्ञानपीठ पुरस्कार से सुशोभित किया गया।

24 अप्रैल, 1974 को हृदयगति रुक जाने के कारण, इनका आकस्मिक निधन हो गया। सन् 1999 में भारत सरकार ने इनकी स्मृति में डाक टिकट जारी किया। इन्होंने अपने जीवन–काल में विपुल साहित्य का सृजन किया, जिसकी जानकारी इनके अग्रदत 'रचना–संसार' से सहज ही प्राप्त की जा सकती है।

18.2.2 दिनकर : रचना–संसार

राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। उन्होंने हिंदी साहित्य की विविध विधाओं पर अपनी लेखनी चलाई। उनका गद्य एवं पद्य समान रूप से समादृत हुआ, लेकिन उनकी सर्वाधिक ख्याति का आधार उनकी पद्यात्मक रचनाएं ही हैं। देश–प्रेम से परिप्लावित उनकी काव्य–साधना के परिप्रेक्ष्य में ही उन्हें राष्ट्रकवि के रूप में सम्मान मिला।

कालक्रम के अनुसार उनके रचना–संसार को इस प्रकार दर्शाया जा सकता है –

रेणुका (1935)	हुंकार (1938)	रसवंती (1939)
द्वन्द्वगीत (1940)	कुरुक्षेत्र (1946)	मिट्टी की ओर (1946)
धूप–छाँह (1946)	सामधेनी (1947)	बापू (1947)
इतिहास के आँसू (1951)	धूप और धुआं (1951)	रश्मिरथी (1952)

नीम के पत्ते (1954)	दिल्ली (1954)	नील कुसुम (1955)
सूरज का ब्याह (1955)	चक्रवाल (1956)	कवि श्री (1957)
सीपी और शंख (1957)	उर्वशी (1961)	परशुराम की प्रतीक्षा (1963)
कोयला और कवित्व(1964)	मृत्तितिलक (1964)	हारे को हरि नाम (1970)

जैसा की पहले उल्लेख किया जा चुका है, दिनकर का गद्य भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। सुना जाता है कि उन्होंने 29 गद्यात्मक पुस्तकें लिखी। इनमें से कुछ प्रमुख पुस्तकों को इस प्रकार नामांकित किया जा सकता है–

मिट्टी की ओर (1946)	अर्द्धनारीश्वर (1952)
रेती के फूल (1954)	हमारी सांस्कृतिक एकता (1954)
संस्कृति के चार अध्याय (1956)	वेणुवन (1958)
राष्ट्रभाषा और राष्ट्रीय एकता (1958)	

18.3 दिनकर के काव्य की प्रवृत्तियाँ

18.3.1 उत्तर छायावादी काव्य

साहित्य में कोई भी वाद स्थाई नहीं रहता। छायावाद भी नहीं रहा। इसके बाद छायावादोत्तर काव्य का उन्मेश हुआ। इस नवीन प्रवृत्ति के आविर्भाव से उद्‌भूत काव्य को प्रगतिवाद के नाम से अभिहित किया गया। साहित्य में मार्क्सवादी दर्शन के प्रवेश को 'प्रगतिवाद' कहने का प्रचलन हो गया। मार्क्स के मतानुसार संसार में वर्गसंघर्षों का कारण आर्थिक विषमता है। इसलिए प्रगतिवादी साहित्य में शोषित, पीड़ित, तिरस्कृत, पद–दलित और मज़लूम समाज के प्रति संवेदना का स्वर सुनाई पड़ता है। दीन–दुखियों की आह–कराह का करूण क्रन्दन इस पीढ़ी के कवियों की लोकप्रिय कथावस्तु है। किसान–मजदूर की भयावह निरीह स्थिति का यथार्थ चित्रण करना ही इस दौर के कवियों की प्रबल प्रवृति रही है। मानवतावाद, शोषकों के प्रति आक्रोश, सामन्तशाही का विरोध, अन्तर्राष्ट्रीयता या विश्वबन्धुत्व की भावना, सामयिक समस्याओं के प्रति सजगता और जीवन का यथार्थ चित्रण, इस कालखण्ड की कविता की प्रमुख विशेषताएँ हैं। सरलता, व्यंग्यात्मकता, मुक्त छन्द और अनावश्यक अलंकारों के प्रयोग से परहेज करना प्रगतिवादी काव्य की खास पहचान है। साम्यवादी समाज की स्थापना करना इस काल के कवियों का अभीष्ट आदर्श रहा है। राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर इस काव्यधारा के कवियों में अग्रगण्य हैं।

18.3.2 मानवतावादी चिन्तन

साहित्य का प्रमुख लक्ष्य मानव–कल्याण का पथ प्रशस्त करना है। भारतीय संस्कृति की तो नींव ही सर्वमंगल–कामना पर आधारित है। अतः दिनकर जैसे भारतीय संस्कृति के उन्नायक के लिए मानवतावादी साहित्य–सृजन में निरत होना स्वाभाविक ही था। इस सन्दर्भ में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का कथन है कि कल्पना की ऊँची उड़ान, विषम परिस्थितियों को अनुकूल बनाने उमंग और सामाजिक चेतना की तीव्रता के कारण दिनकर प्रथम दो कवियों से एकदम भिन्न हैं। दिनकर के काव्य में उमंग और मस्ती तथा सामाजिक मंगलाकांक्षा का प्राधान्य है।

दिनकर के काव्य को रेखांकित करते हुए डॉ0 नगेन्द्र ने लिखा है कि दिनकर की सबसे बड़ी विशेषता है– अपने देश और युग सत्य के प्रति जागरूकता। कवि देश और काल के सत्य को अनुभूति और चिन्तन दोनों स्तरों पर ग्रहण करने में समर्थ हुआ है। कवि ने राष्ट्र को उसकी तात्कालिक घटनाओं, यातनाओं, विषमताओं आदि के ही

रूप में नहीं, उसकी संश्लिष्ट सांस्कृतिक परम्परा के रूप में भी पहचाना है और उसके प्राचीन मूल्यों को नए जीवन सन्दर्भों के परिप्रेक्ष्य में आकलन कर एक ओर उन्हें जीवन्तता प्रदान की है, दूसरी ओर वर्तमान की समस्याओं और आकांक्षाओं को महत्त्व देते हुए उन्हें प्राचीन किन्तु जीवन्त मूल्यों से जोड़ना चाहा है।

वैसे तो दिनकर के काव्य में पदे–पदे मानव–मंगल की भावना परिलक्षित होती है पर कुरुक्षेत्र का तो एक–एक पृष्ठ मानवता की भावना से अनुप्राणित है। युधिष्ठिर की विरक्ति का प्रमुख कारण कुरुक्षेत्र के रण में हुई मानवता का विनाश है। युद्ध क्षेत्र से निकलने वाली चीख–पुकार उसे आत्मग्लानि से भर देती है। वह नर–संहार से प्राप्त विजय की भर्त्सना करता है।

कुरुक्षेत्र के तृतीय सर्ग की ये पंक्तियां दिनकर के मानवतावादी दृष्टिकोण का पुष्ट प्रमाण हैं–

पृथ्वी हो साम्राज्य स्नेह का, जीवन स्निग्ध, सरल हो,
मनुज–प्रकृति से विदा सदा को दाहक द्वेष–गरल हो।
बहे प्रेम की धार, मनुज को यह अनवरत भिगोये,
एक दूसरे के उर में नर बीज प्रेम के बोये।।

कुरुक्षेत्र का उद्देश्य की मानवता के दग्ध–हृदय पर चन्दन का अनुलेप करना है।

18.3.3 राष्ट्रीय चेतना

छायावादोत्तर हिन्दी काव्य में राष्ट्रीय स्वाधीनता एवं राष्ट्रीय चेतना के चित्रण में कवियों की कलम डटकर चली है। इस काव्यधारा के कवियों में दिनकर का मूर्धन्य स्थान है। इनकी रचना 'रेणुका' और 'हुंकार' में राष्ट्रीयता की भावना का पुरजोर उद्घोष सुनाई पड़ता है। अपने काव्य में अनुस्यूत राष्ट्रीय चेतना के सम्बन्ध में दिनकर ने स्वयं लिखा है कि राष्ट्रीयता मेरे व्यक्तित्व के भीतर से नहीं जन्मी, उसने बाहर से आकर मुझे आक्रांत किया है। .....अपने समय की धड़कन सुनने को जब भी मैं देश के हृदय में कान लगाता, मेरे कान में किसी बम के धमाके की आवाज आती, फांसी पर झूलने वाले किसी नौजवान की निर्भीक पुकार आती, अथवा मुझे दर्द भरी ऐंठन की वह आवाज सुनाई देती थी, जो गांधी जी के हृदय में चल रही थी, जो उन सभी राष्ट्रनायकों के हृदय में चल रही थी, जिनसे बढ़कर मैं किसी और को श्रद्धेय नहीं समझता था। मेरी समझ में उस समय सारे देश में एक स्थिति थी, जो सार्वजनिक संघर्ष की स्थिति थी, सारे देश का एक कर्त्तव्य था, जो स्वतंत्रता संग्राम को सफल बनाने का कर्त्तव्य था और सारे देश की एक मनोदशा थी जो क्रोध से क्षुब्ध, आशा से चंचल और मजबूरियों से बेचैन थी।

वस्तुतः भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन भारतमाता के पैरों में सदियों से पड़ी दासता की बेड़ियों को काटने का संयुक्त प्रयास था। इसी आन्दोलन के गर्भ से दिनकर–साहित्य पैदा हुआ। इनका पूरा साहित्य राष्ट्रीय चेतना से ओत–प्रोत है। इनकी राष्ट्रीयता में ओज एवं संघर्ष है।

डॉ0 गोपाल राय सत्यकाम ने दिनकर के काव्य का अनुशीलन करते हुए लिखा है कि देश के स्वाधीन होने के समय दिनकर हिंदी के एक प्रमुख और प्रतिष्ठित कवि थे और वे ऐसे कवि थे जिनकी कविता राष्ट्रीयता आन्दोलन की समसामयिक गतिविधियों से अभिन्न रूप से संबद्ध रही थी। राष्ट्रीयता से ओत–प्रोत इनका यह सम्बोधन द्रष्टव्य है –

चिंतको ! चिंतना की तलवार गढ़ो रे !
ऋषियो ! कृषान, उद्दीपन मंत्र पढ़ो रे !

योगियो ! जगो, जीवन की ओर बढ़ो रे !

बन्दूकों पर अपना आलोक मढो रे !

18.3.4 साम्यवाद का शंखनाद

दिनकर राष्ट्रवि हैं, इसलिए उनके काव्य में राष्ट्रहित सर्वोपरि है। राष्ट्रीयता के साथ–साथ, उनके काव्य में साम्यवादी विचारधारा का प्रबल प्रवाह भी देखा जा सकता है। उनके काव्य में साम्यवादी चिंतक कार्ल मार्क्स की भांति ही शोषक एवं शोषित दोनों वर्गों की जीवन–पद्धति को विश्लेषित एवं विवेचित किया गया है। उनकी मान्यता है कि समाज में एक सर्वहारा वर्ग है और दूसरा वर्ग है पूंजीपतियों का। एक शोषित है और दूसरा शोषक। दिनकर इस अमीर और गरीब के अन्तर को मिटाकर एक वर्गहीन समाज की स्थापना करना चाहते हैं। इन्हीं आदर्शों को प्रतिष्ठापित करने के लिए वे मार्क्सवादी सभी साधनों को प्रयुक्त करने के पक्षधर थे।

दिनकर के काव्य में मार्क्स के साम्यवाद की प्रतिध्वनि सहज ही सुनाई पड़ती है। साक्ष्यार्थ उनकी कुछ पंक्तियां प्रस्तुत हैं –

जब तक मनुज मनुज का सुख भाग नहीं सम होगा।

शमित न होगा कोलाहल संघर्ष नहीं कम होगा।

दिनकर जी की मान्यता है कि समाज में वर्ग–भेद ही वैमनस्य एवं संघर्ष की जड़, है। अतः इसका निराकरण अत्यावश्यक है –

वट की विशालता के नीचे जो अनेक वृक्ष,

ठिठुर रहे हैं, उन्हें फैलने का वर दो।

रस सोखता है जो यहां का भीमकाय वृक्ष,

उसकी शिराएं तोड़ो, डालियां कतर दो।।

कुरुक्षेत्र में तो अनेकत्र साम्यवाद का शंखनाद हुआ है। कवि समाज में समता के पुष्प खिलने की बाट जोह रहा है। वह भगवान को सम्बोधित करता हुआ कहता है कि संसार समता की कोमल किरणों के प्रकाश से कब आलोकित होगा। इस दग्ध–धरा के निष्पन्द जीवन में कब हरियाली की रमक आएगी–

"साम्य की वह रश्मि स्निग्ध उदार,

कब खिलेगी, कब खिलेगी विश्व में भगवान?

कब सुकोमल जयोति से अभिसिक्त,

हो, सरस होंगे जली–सूखी रसा के प्राण?

18.3.5 गांधी दर्शन में आस्था

जब दिनकर की कलम सामाजिक विद्रूपता के विरुद्ध आग उगल रही थी, तभी भारत साम्प्रदायिकता के संक्रमण से त्रस्त था। द्वितीय विश्वयुद्ध के विनाशकारी परिणामों को सारी दुनिया भोग रही थी। विद्वेषपूर्ण हिंसा के इस दुर्दम दौर में महात्मा गांधी ही थे जो अहिंसा, प्रेम और करुणा की अलख जगाने में लगे हुए थे। युवा दिनकर पर गांधी की इस विचारधारा का गहरा प्रभाव पड़ा। उनकी 'बापू' नामक काव्य–कृति उसी गहन प्रभाव की परिणति है। गांधी के अहिंसा आन्दोलन से अभिभूत होकर दिनकर ने लिखा–

तू चला, तो लोग कुछ चौंक पड़े

तूफान उठा या आंधी है?

ईसा की बोली रूह,

अरे यह तो बेचारा गांधी है।

दिनकर की निर्दिष्ट काव्य–कृति में गांधी से सम्बद्ध अनेक प्रसंगों को संजोया गया है। इन प्रसंगों में गांधी–दर्शन की सार्थकता प्रभावात्मक रूप में प्रतिपादित हुई है। कुछ प्रसंगों में राष्ट्रव्यापी भय, अशान्ति, घृणा और हिंसा की भयावह स्थितियों का आकलन हुआ है। ऐसे तिमिराच्छन्न परिवेश में गांधी ही उन्हें एक मात्र आशा की किरण नज़र आते हैं, क्योंकि उनकी उपस्थिति मात्र से भय के भाव दूर भागते हैं।

दिनकर गांधी की एक ऐसी दिलकश तस्वीर खींचते हैं, मानो उस तस्वीर से गांधी की देह नहीं, बल्कि उनके विचार, उनके जीवनादर्श प्रकट होते जाते हैं। यहां गांधी एक ऐसे महामानव के रूप में उभरते हैं, जिनके सामने कवि स्वयंको तुच्छ पाता है। उसका श्रद्धासनित ह्रदय तरलायित हो उठता है –

सामान्य मृत्तिका के पुतले, हम समझ नहीं कुछ पाते हैं,

तू ढ़ो लेता किस भांति पाप जो हम दिन–रात कमाते हैं

कितना विभेद ! हम भी मनुष्य पर तुच्छ स्वहित में सदा लीन,

पल–पल चंचल, व्याकुल विषण्ण, लोहू के तापों के अधीन

पर तू तापों से परे, कामना–जयी, एक रस निर्विकार,

पृथ्वी को शीतल करता है, काया–द्रुम–सी बाहें पसार।

भारत में गांधी–युग के बाद के युग में हम कहां तक पहुंचे हैं? चहुंदिश हिंसा, कपट, घृणा, अविश्वास और संवादहीनता के वातावरण में आज यदि दिनकर जीवित होते, तो क्या फिर से गांधी–दर्शन की सार्थकता के गीत नहीं गाते?

18.3.6 शोषितों की दीन–दशा का यथार्थ चित्रण

इस काल–खण्ड के कवि पददलित, शोषित निरीह किसान और मजदूरों के हिमायती थे। दिनकर का स्वर इन सब कवियों में सर्वाधिक प्रबल था। युगदर्शन की पहली प्रतिक्रिया ने दिनकर को छायावाद के स्वप्निल सुनहले इन्द्रजाल से बाहर निकाला। उनकी कविता ने कल्पनाओं की झिलमिल उड़ान को छोड़कर यथार्थ की कठोर भूमि पर पाँव रखने की ठानी। माली द्वारा पोषित सुरम्य उद्यानों को छोड़कर, खून–पसीने से अभिसिंचित किसानों के खेत–खलियानों की राह ली। पूंजीपतियों को कोसा और दीन–दुखियों की यथार्थ स्थिति को उजागर करने में जुट गए। दिनकर की लेखनी द्वारा चित्रित ऐसा ही मर्मस्पर्शी एक चित्र यहां प्रस्तुत किया जा रहा है –

श्वानों को मिलता दूध–वस्त्र, भूखे बालक अकुलाते हैं,

माँ की हड्डी से चिपक ठिठुर जाड़ों की रात बिताते हैं,

युवती की लज्जा वसन बेच जब ब्याज चुकाए जाते हैं?

मालिक जब तेल–फुलेलों पर पानी–सा द्रव्य बहाते हैं,

दिनकर ने अपने काव्य 'रश्मिरथी' में जातिगत भेदभाव को उद्‌घाटित किया है। इस कृति में एक ओर दिनकर ने परम्परा–पोषित, जर्जर रूढ़िवादी मान्यताओं पर प्रखर प्रहार किया है, तो दूसरी ओर युगसापेक्ष, प्रगतिशील जीवन–मूल्यों की स्थापना पर बल दिया है। इसमें सामाजिक अन्याय के कारण, उच्च कुल की अनर्गल मान–मर्यादा की कड़े शब्दों में भर्त्सना की है। कर्ण के माध्यम से अपनी आक्रोश भरी विस्फोटक वाणी में उन्होंने कहा है –

जग में जो भी निर्दलित, प्रताड़ित जन हैं,

जो भी निहीन हैं, निन्दित हैं, निर्धन हैं,

यह कर्ण उन्हीं का सखा, बन्धु सहचर है,

विधि के विरुद्ध ही उसका रहा समर है।

18.3.7 सत्ता से संघर्ष

दिनकर जी का जीवन बचपन से ही संघर्षो से कंटकाकीर्ण रहा है। जीवन की इस ठेलमठेल में तपकर वे कुन्दन बन कर निकले। वे ऐसे कवि थे, जिन्हें सरकार ने 'राष्ट्रकवि' तथा जनता ने 'जनकवि' के रूप में सम्मान दिया। दूर–देहात में निर्धन मजदूर किसानों की दयनीय दशा देखकर उनका हृदय चीत्कार उठा। दिल्ली की शानोशौकत देखकर तो उनके हृदय में ज्वालामुखी फूट पड़ा–

सकल देश में हालाहल है, दिल्ली में हाला है।

दिल्ली में रोशनी, शेष भारत में अंधियाला है।।

समर शेष है, नहीं पाप का भागी केवल व्याध।

जो तटस्थ हैं, समय लिखेगा उनके भी अपराध।।

दिनकर जी सांसद होते हुए भी सरकार की स्वस्थ आलोचना करने से कभी नहीं चूके।

18.3.8 आशावादी स्वर

यद्यपि प्रगतिवादी कवियों में क्रांति की भावना कूट–कूट कर भरी हुई थी। वे समस्त समाज में परिव्याप्त असमानता एवं अन्याय के प्रचलन को समूल नष्ट कर देना चाहते थे। यह भविष्य के प्रति आश्वस्त एवं आशावादी हुए बिना संभव नहीं है। जब मनुष्य संघर्ष करते–करते टूटने लगता है, उसके कदम लड़खड़ाने लगते हैं। वह मंजिल पर पहुँचने से पहले ही निराश होकर हार मानने की सोचने लगता है तो दिनकर जी ऐसे हताश थके–हारे व्यक्ति को आशा का दीप दिखाते हैं। उसे उत्प्रेरित करते हैं –

वह प्रदीप जो दीख रहा है झिलमिल दूर नहीं है;

थक कर बैठ गए क्या भाई मंजिल दूर नहीं है।

दिशा दीप्त हो उठी प्राप्त कर पुण्य–प्रकाश तुम्हारा;

लिखा जा चुका अनल–अक्षरों में इतिहास तुम्हारा।

जिस मिट्‌टी ने लहू पिया, वह फूल खिलाएगी ही;

अम्बर पर घन बन छाएगा ही उच्छवास तुम्हारा।

ऐसे ही 'कुरुक्षेत्र' में घृणित रक्तपात से विरक्त होकर युधिष्ठिर निराशा के सागर में डूबने लगते हैं। वे अपने बन्धु–बान्धवों के सर्वनाश पर आँसू बहाने लगते हैं तथा अवसाद और विषाद की भावनाओं से अभिभूत होकर पलायनवादी प्रवृत्ति का शिकार होते हैं तो भीष्म पितामह उसे धीरज देते हैं और कहते हैं कि हुआ सो हुआ, उसे कोई रोक नहीं सकता। प्रकृति में प्रभंजन आ जाने पर न जाने कितने पक्षी मर जाते हैं, किंतु कुछ समय बाद जीवन फिर यथावत् चलने लगता है। इसलिए जीवन में आशा को बनाए रखो–

आशा के प्रदीप को जलाए चलो धर्मराज,
एक दिन होगी मुक्त भूमि रण–भीति से।
भावना मनुष्य की न राग में रहेगी लिप्त,
सेवित रहेगा न जीवन अनीति से।

18.3.9 भाग्यवाद का विरोध

भारत के लोग भाग्य में बहुत विश्वास करते हैं। प्रायः उनकी धारणा रहती है कि मनुष्य के भाग्य में जो कुछ लिखा है, उसके अनुसार मनुष्य को अपना जीवन बिताना पड़ता है। अमीरी–गरीबी, मान–अपमान, ऊँच–नीच सब किस्मत के खेल हैं, किन्तु प्रगतिवादी यह सब मानने के लिए तैयार नहीं है। वह तो यहां तक कह देता है, "भगवान पुराना घुन खाया बेकार हुआ, स्व हाथों से निर्माण करो भगवान नया।"

इस दौर के कवि जब ईश्वर की अस्मिता को भी चुनौती देने लगते हैं, तो भाग्य भला उनके सामने किस खेत की मूली है। दिनकर जी स्वयं एक कर्मठ एवं संघर्षशील कवि थे। उनके समस्त काव्य में कर्म को प्रधानता दी गई है। दिनकर के विचारों का प्रतिपादन 'कुरुक्षेत्र' में भीष्म पितामह की विचारधारा से हुआ है। भीष्म भाग्यवादिता का प्रतिरोध करते हुए कहते हैं कि यदि भाग्यवादी सत्य है तो रत्न–गर्भा पृथ्वी क्यों न उसके रत्नों को उसके चरणों पर अर्पित कर देती?

पूछो किसी भाग्यवादी से, यदि विधि–अंक प्रबल है,
पद पर क्यों देती न स्वयं वसुधा निज रत्न उगल है?
उपजाता क्यों विभव प्रकृति को सींच–सींच वह जल से?
क्यों न उठा लेता निज संचित कोष भाग्य के बल से?

भीष्म के पद–पद पर भाग्यवाद का निराकरण किया है और कर्मवाद की प्रतिष्ठा की है। कुरुक्षेत्र में कहा गया है कि जीवन के कण–कण में कर्म समाहित है। गीता में भी तो कर्मयोग का उपदेश दिया गया है।

'अपनी प्रगति जांचिए'

1. दिनकर का जन्म ..... को हुआ।
2. ..... ने इनकी पुस्तक 'संस्कृति के चार अध्याय' की भूमिका लिखी।
3. इनकी रचना ..... पर इन्हें ज्ञानपीठ पुरस्कार मिला।
4. ..... को दिनकर जी का स्वर्गवास हो गया।

18.4 सारांश

जन्म से लेकर मृत्यु–पर्यनत दिनकर जी परिश्रम के बल पर अपने जीवन को सफल बनाने में जुटे रहे, उन्होंने कभी पीछे मुड़कर नहीं देखा, जिसके परिणाम–स्वरूप उन्होंने विपुल साहित्य की रचना की, एक से बढ़कर एक उपलब्धियों के ढेर लगा दिए। उन्होंने साहित्य अकादमी पुरस्कार, ज्ञानपीठ पुरस्कार एवं पद्म भूषण जैसे उत्कृष्ट सम्मान प्राप्त करके अपने नाम की सार्थकता सिद्ध की। हिन्दी साहित्य की विविध विधाओं पर उन्होंने अधिकार पूर्वक लिखा तथा अपने साहित्यिक अवदान के बल पर 12 वर्ष तक राज्यसभा के मनोनीत सदस्य रहे। राष्ट्रप्रेम से ओत–प्रोत साहित्य–सृजन के कारण भारत सरकार ने इन्हें राष्ट्रकवि के रूप में मान्यता दी तो जनता ने इन्हें 'जनकवि' एवं 'युगचारण' की उपाधि से अलंकृत किया। इनका समस्त काव्य वर्ग–वैषम्य, रूढ़िवादिता, जाति–पाति, धार्मिक उन्माद, शोषण एवं भाग्यवाद जैसी परम्परित कुरीतियों के विरोध का अमित आगार है। जोश व खरोश, विद्रोह, क्रांति, आक्रोश आदि की उग्र भावनाएँ इसके काव्य में ठाठें मार रही हैं।

मानवीय जीवन–मूल्य, साम्यवादी सोच, राष्ट्रीय चेतना गांधी दर्शन, शोषकों के प्रति घृणा, शोषितों के प्रति संवेदना, कर्म की प्रतिष्ठा जैसी भावनाओं का प्रतिपादन इनके काव्य में आद्योपान्त अनुस्यूत है।।

18.5 मुख्य शब्दावली

मृदुभाषी	=	मीठा बोलने वाला
कटाक्ष	=	कटु आलोचना, व्यंग्य–बाण
परिप्लावित	=	पूर्ण रूप से भरा हुआ
आविर्भाव	=	उत्पन्न होना
परिलक्षित	=	दिखाई देना
सर्वोपरि	=	सबसे ऊपर
अस्मिता	=	अस्तित्व, महत्त्व
आद्योपान्त	=	आदि से अन्त तक
अनुस्यूत	=	समाहित, समाविष्ट

18.6 अपनी प्रगति जांचिए के उत्तर

1. 23 सितम्बर, 1908
2. पण्डित जवाहर लाल नहेरू
3. उर्वशी
4. 24 अप्रैल, 1974

18.7 अभ्यास हेतु प्रश्न

1. दिनकर की प्रमुख काव्य–कृति कौन–कौन सी हैं?
2. दिनकर ने जीवन के किन–किन संघर्षों से लोहा लिया?

3. दिनकर के काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियां कौन–कौन सी हैं?

4. दिनकर को 'राष्ट्रकवि' कहना कहां तक संगत है?

5. दिनकर किस काव्यधारा के कवि हैं और क्यों?

6. दिनकर के काव्य में शोषितों की यथार्थ स्थिति का चित्रण किस प्रकार हुआ है।

18.8 आप ये भी पढ़ सकते हैं।

1.	डॉ0 रेणु व्यास,	दिनकर : सृजन और चिन्तन
2.	डॉ0 शंभुनाथ,	दिनकर : कुछ पुनर्विचार
3.	डॉ0 जयसिंह 'नीरद'	दिनकर के काव्य में परम्परा और आधुनिकता
4.	शिवसागर मिश्र	दिनकर : एक सहज पुरुष
5.	डॉ0 सावित्री सिन्हा	युगचारण दिनकर
6.	कामेश्वर शर्मा	दिग्भ्रमित राष्ट्रकवि
7.	डॉ0 सत्यकाम वर्मा	जनकवि दिनकर
8.	जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी	दिनकर : व्यक्तित्व एवं कृतित्व
9.	डॉ0 पी0 आदेश्वरराव	दिनकर : वैचारिक क्रांति के परिवेश में
10.	एस0 के0 पद्मावती	कवि दिनकर : व्यक्तित्व और कृतित्व
11.	डॉ0 छोटे लाल दीक्षित	दिनकर का रचना–संसार
12.	धर्मपाल सिंह	दिनकर का वीर काव्य
13.	निधि भार्गव	दिनकर–काव्य में क्रांतिमंत चेतना
14.	डॉ0 अश्विनी वशिष्ठ	दिनकर के काव्य में मानव–मूल्य
15.	डॉ0 सरला परमार	दिनकर की काव्यभाषा : शैलीवैज्ञानिक अध्ययन
16.	गोपालकृष्ण कौल	दिनकर सृष्टि और दृष्टि
17.	शिखर चन्द्र जैन	राष्ट्रकवि दिनकर एवं उनकी काव्य कला
18.	गोपाल राय सत्यकाम	दिनकर व्यक्तित्व और रचना के नए आयाम

इकाई 19 दिनकर का काव्य–शिल्प

इकाई की रूपरेखा

19.0 परिचय

19.1 इकाई के उद्देश्य

19.2 दिनकर–काव्य : भाव पक्ष

19.2.1 रस–निरूपण

19.2.2 प्रकृति–चित्रण

19.3 दिनकर काव्य : अभिव्यंजना पक्ष

19.3.1 भाषा

19.3.2 लोकोक्तियां एवं मुहावरे

19.3.3 बिम्ब एवं प्रतीक

19.3.4 काव्य शैली

19.3.5 अलंकार विधान

19.3.6 छन्द विधान

19.4 सारांश

19.5 मुख्य शब्दावली

19.6 अपनी प्रगति जांचिए के उत्तर

19.7 अभ्यास हेतु प्रश्न

19.8 आप ये भी पढ़ सकते हैं।

19.0 परिचय

दिनकर बहुमुखी प्रतिभा के धनी, एक सशक्त कवि हैं। उनके बहुत आयामी काव्य में जीवन के विविध रूप सहज ही देखे जा सकते हैं। उन्होंने अपने हृदय की भावोर्वर भूमि पर ऐसा काव्य–कानन सरसाया है, जिसकी आकर्षक हरियाली, रंग बिरंगे, सुरभीले पुष्पों की सुगंध और इसके सुधोपम फलों का आस्वादन करके जनमानस आनन्दप्लावित हो उठा।

इन्होंने मुक्तक एवं प्रबन्धात्मक दोनों ही प्रकार के विपुल काव्य का सृजन किया है, जिसका शिल्प–विधान अपने ढंग का निराला है। काव्य के शिल्प विधान में कवि के कथ्य और उनकी अभिव्यंजना पद्धतियां मणिकांचन रूप में समाहित रहती हैं। वस्तुतः शिल्प का सम्बन्ध अपेक्षाकृत अभिव्यंजना पक्ष से अधिक है, जिसे काव्य–सौन्दर्य के अन्तर्गत सन्निहित किया जा सकता है।

दिनकर जी भाव और भाषा दोनों में विद्रोही प्रवृत्ति को लेकर काव्य–क्षेत्र में उतरे हैं। परम्परागत निर्जीव शिल्पगत बन्धनों में बन्धना उनको स्वीकार्य नहीं था। शिल्प सम्बन्धी अपने विचारों को दिनकर ने कुछ इस प्रकार व्यक्त किया है, "मुझे अपने ही कृत प्रयोग से यह भासित हो गया कि कविता की प्रचलित शैली अपूर्ण होने लगी है और यहां से काव्य का मार्ग वे प्रशस्त करेंगे, जिन पर परम्परा का बन्धन उतना कड़ा नहीं, जितना कि हम लोगों पर है।"

भाषा, शब्द–चयन, शब्द–शक्तियां, काव्य–गुण, छन्द, अलंकार, बिम्ब, प्रतीक आदि सब अभिव्यंजना के महत्त्वपूर्ण अंग हैं। उनके काव्य में भाव और भाषा गलबहियां डाले चलते हैं। विषयानुकूल सटीक शब्द–चयन से उनकी भावाभिव्यंजना हर दिल अज़ीज बन गई है।

19.1 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई में आगे जानेंगे–

- दिनकर–काव्य में रस निरूपण को
- दिनकर – काव्य में प्रकृति चित्रण को
- दिनकर–काव्य में भाषा, लोकोक्तियों, मुहावरों एवं शब्द शक्तियों के प्रयोग को,
- दिनकर की काव्य शैली, अलंकार विधान, बिम्ब, प्रतीक एवं छन्द विधान को।

19.2 दिनकर–काव्य : भाव पक्ष

दिनकर छायावादोत्तर काल के प्रसिद्ध कवि हैं। अपनी देशप्रेम से परिपूर्ण रचनाओं के कारण उन्होंने 'राष्ट्रकवि' का रुतबा प्राप्त किया। उनके काव्य में मानवतावाद, साम्यवाद, क्रांति एवं विद्रोह के स्वरों के साथ–साथ मनुष्य की कोमल एवं करुण भावनाओं का इज़हार भी देखा जा सकता है।

परशुराम की प्रतीक्षा, रश्मिरथी, हुंकार, रसवंती, कुरुक्षेत्र और उर्वशी जैसी विविध भावों से भरी रचनाएँ इस तथ्य को प्रमाणित करती हैं कि दिनकर समय और स्थितियों के अनुसार अपनी भावधारा को अभीष्ट मोड़ देने में सक्षम थे।

19.2.1 रस निरूपण

दिनकर किसी साहित्यिक वाद से बन्धे हुए नहीं थे। तत्कालीन परिस्थितियों एवं प्रवृत्तियों की अपेक्षा के अनुसार इनके हृदय में भिन्न–भिन्न भावों की लहरें उमड़ने लगीं। इसका कारण था उनके अन्तस में दो महाकवियों का एक साथ पैठा होना। उनमें एक थे सर मोहम्मद इकबाल, जिनकी कविताएं पाठकों के मन में तूफान पैदा करती थी और चिंतन के नए द्वार खोलती थी। दूसरे थे गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर जिनकी कविताएं प्रेम और करुणा के भावों से परिप्लावित थी, जो भावनाओं की शीतल एवं मृदु उर्मियों को तरंगायित करती थी। दिनकर ने पहले को युगीन त्रासदी के कारण अपनाया तो दूसरे को अपने हृदय की पुकार के कारण।

दिनकर के इस भाव–वैविध्य को रेखांकित करते हुए शिवसागर मिश्र ने लिखा है कि उनके साहित्यिक दृष्टिकोण में अनेक भावों का सम्मिश्रण है। वास्तव में दिनकर जी ने आरम्भ से ही हिमालय के साथ–साथ गंगा, युधिष्ठिर के साथ–साथ रसवंती, धर्म के साथ–साथ नीलकुसुम और भीष्म पितामह के साथ–साथ उर्वशी के सपने देखे थे। एक सम्पूर्ण मनुष्य में जितने भी रस हो सकते हैं, दिनकर जी में वे सभी रस हिलकोरे लेते रहे। सम्पूर्ण साहित्यिकता को अपने में समेटे दिनकर कभी काल–युक्त रचनाओं से जुड़े तो कभी काल–मुक्त शाश्वत काव्य–कला के पास खड़े दिखाई पड़ते हैं। यह वैविध्य ही दिनकर की विशेषता बन गया।

क. वीर रस :

वैसे भी उन दिनों राष्ट्रप्रेम का जादू कवियों के सिर चढ़कर बोल रहा था तथा वीरता से ओत–प्रोत कविताओं की बाढ़–सी आई हुई थी। साहित्य में सर्वत्र वीर रस प्रवहमान था। दिनकर के काव्य से एक उदाहरण प्रस्तुत है–

मेरे मस्तक के छत्र–मुकुट वसु काल–सर्पिणी के शत फण,
मुझ चिर– कुमारिका के ललाट में नित्य नवीन रूधिर–चन्दन,
आँजा करती हूँ चिता–धूम का दृग में अन्त तिमिर–अंजन,
संहार–लपट का चीर पहन नाचा करती मैं छुम–छुनन,
झन–झन झन–झन–झन झनन–झनन।

हुंकार, युगधर्म, हिमालय के प्रति, कुरुक्षेत्र आदि रचनाएँ तो हैं ही वीर रस से सराबोर। भारत माता को संकट में देख कर कवि के उद्‌गार फूट पड़ते हैं :

कह दे शंकर से, आज करें, के प्रलय नृत्य फिर एक बार,
सारे भारत मे गूंज उठे, 'हर–हर–बम' का फिर महोच्यार।

ख. श्रृंगार रस :

लोग दिनकर पर आक्षेप लगाने लगे कि जोश के सिवाए उनकी कविता में और कुछ नहीं है तो उन्होंने उत्तर दिया, "मैं भी चाहता था कि गर्जन–तर्जन छोड़कर कोमल कविताओं की रचना करूँ, जिनमें फूल हों, सौरभ हों, रमणी का सुन्दर मुख और प्रेमी पुरुष के हृदय कर उद्वेग हो और ऐसी अनेक रचनाएं ..... रेणुका, रसवंती और द्वन्द्वगीत में प्रकाशित हुई हैं। उर्वशी से श्रृंगार रस का एक उदाहरण देखिए–

जग भर की माधुरी अरूण अधरों में धरी हुई–सी,
आँखों में वारुणी रंग निद्रा कुछ भरी हुई सी!
दर्पण, जिसमें प्रकृति रूप अपना देखा करती है,
वह सौन्दर्य, कला जिसका सपना देखा करती है।
नहीं, उर्वशी नारि नहीं, आभा है अखिल भुवन की
रूप नहीं, निष्कलुष कल्पना है स्रष्टा के मन की।

ग. करुण रस

इस रोती हुई विधवा को उठा
किस भांति गले लगाऊँगा मैं।
जिसके पति की न चिता है बुझी
निज अंक में कैसे बिठाऊँगा मैं।

घ. शान्त रस

धर्म का दीपक, दया का दीप,
कब जलेगा, कब जलेगा, विश्व में भगवान?

कब सुकोमल ज्योति से अभिसिक्त

हो, सरस होंगे जली–सूखी रसा के प्राण?

19.2.2 प्रकृति चित्रण

मनुष्य और प्रकृति का घनिष्ट सम्बन्ध है। मनुष्य प्रकृति का पुराना सहचर है। उसने प्रकृति के कोमल और क्रूर सभी रूपों को देखा है। अतः दिनकर के काव्य में भी स्थिति सापेक्ष प्रकृति के भव्य एवं भयंकर दोनों ही रूप देखे जा सकते हैं।

भव्य रूप :

यह धरती फल, फूल, अन्न धन –

रतन उगलने वाली,

यह पालिका मृगव्य जीव की

अटवी सघन निराली,

तुंग शृंग ये शैल कि जिनमें

हीरक–रत्न भरे हैं,

ये समुद्र, जिनमें मुक्ता,

विद्रुम, प्रवाल बिखरे हैं।

भयंकर रूप :

और युधिष्ठिर से कहा, "तूफान देखा है कभी?

किस तरह आता प्रलय का नाद वह करता हुआ,

काल–सा बन में द्रुमों को तोड़ता–झकझोरता,

और मूलोच्छेद कर भू पर सुलाता क्रोध से

उन सहस्रों पादपों को जो कि क्षीणाधार हैं?

रुग्ण शाखाएँ द्रुमों की हरहरा कर टूटतीं,

टूट गिरते शावकों के साथ नीड़ विहंग के;

अंग भर जाते बनानी के निहत तरू, गुल्म से,

छिन्न फूलों के दलों से, पक्षियों की देह से।

19.3 दिनकर–काव्य : अभिव्यंजना पक्ष

काव्य के अभिव्यंजना पक्ष में भाषा, शब्द–चयन, शब्द–शक्तियां, लोकोक्ति, मुहावरे, काव्य–गुण, काव्य–शैली, अलंकार एवं छन्दों को समाहित किया जाता है।

19.3.1 भाषा

दिनकर की मान्यता है कि कविता केवल विचार और भाव को लेकर सफल नहीं होती। सफल वह तब होती है जब भाव और विचार अनुकूल भाषा में, अनुकूल ढ़ंग से व्यक्त होते हैं। कविता का अन्तिम विश्लेषण उसमें प्रयुक्त भाषा का विश्लेषण है। कविता का चरम सौन्दर्य उसमें प्रयुक्त भाषा का सौन्दर्य है।

दिनकर की काव्य–भाषा सरल, उत्तेजक, आक्रोशपूर्ण और प्रेमभाव से परिपूरित है। उसका शब्द–चयन बड़ा सटीक है, जिसमें तत्सम, तद्भव, देशज एवं विदेशी शब्दों का भावानुकूल प्रयोग हुआ है।

तत्सम शब्द :

है बहुत बरसी धरित्री पर अमृत की धार,
पर नहीं अब तक सुशीतल हो सका संसार।
भोग–लिप्सा आज भी लहरा रही उद्दाम,
बह रही असहाय नर की भावना निष्काम।

तद्भव शब्द :

पीला चीर कोर में जिसकी
चकमक गोटा–जाली।
चली पिया के गाँव उमर के
सोलह फूलों वाली।

विदेशी (अंग्रेजी) शब्द :

एक केबिनेट के अनेक यहां मुख हैं,
डिमोक्रसी दूर करो हमें तानाशाह दो,
चिन्तन में सोशलिस्ट नर्क है,
कम्यूनिष्ट और अंग्रेजी में क्या फर्क है,
रेलवे का स्लीपर उठाए कहां जाता है?

शब्द–शक्तियां :

दिनकर के काव्य में यथास्थान शब्द की तीनों ही शक्तियों का अभीष्ट प्रयोग हुआ है। यथा–

अभिधा :

कोरवों का श्राद्ध करने के लिए
या कि रोने को चिता के सामने,
शेष जब था रह गया कोई नहीं
एक वृद्धा, एक अन्धे के सिवा।

लक्षणा :

रेंगने लगते सहस्रों सांप सोने के रुधिर में
चेतना रस की लहर में डूब जाती।

व्यंजना

रक्त से छाने हुए इस राज्य को
वज्र हो कैसे सकूँगा भोग मैं?
आदमी के खून में यह है सना
और है इसमें लहू अभिमन्यु का।

19.3.2 लोकोक्तियां एवं मुहावरे

दिनकर के काव्य में पदे–पदे लोकोक्ति और मुहावरों का मणिकांचन संयोग हुआ है। यथा–

लोकोक्तियां

– क्षमा शोभती उसी भुंजग को, जिसके पास गरल है।

– अचल रहे साम्राज्य शान्ति का, जियो और जीने दो।

मुहावरे

– मनुज ले जान हाथों में दनुज पर टूटता है।

– शकुनि को चाह थी, कैसे चुकाए ऋण पिता का,
मिला दे धूल में किस भांति कुरुकुल की पताका।

– आग हथेली पर सुलगा कर, सिर का हविष चढ़ाना
शूर धर्म है जग को अनुपम बलि का पाठ पढ़ाना।

19.3.3 बिम्ब एवं प्रतीक

कविता में सम्प्रेषणीयता एवं प्रभावात्मकता का आधान करने के लिए इसमें बिम्ब एवं प्रतीकों का प्रयोग नितान्त आवश्यक है। दिनकर के काव्य में बिम्ब एवं प्रतीकों का यथेष्ट प्रयोग हुआ है। यथा –

बिम्ब :

परस्पर की कलह से, वैर से, होकर विभाजित,
कभी से दो दलों में हो रहे थे लोग सज्जित।
खड़े थे वे हृदय में प्रज्वलित अंगार लेकर,
धनुर्ज्या को चढ़ाकर, म्यान में तलवार लेकर।

प्रतीक :

युधिष्ठिर ! क्या हुताशन–शैल सहसा फूटता है?

कभी क्या वज्र निर्घन व्योम से भी छूटता है?

अनलगिरि फूटता, जब ताप होता अवनि में,

कड़कती दामिनी विकराल धूमाकुल गगन में।

19.3.4 काव्य–शैली

काव्य में शैली का अपना महत्त्व होता है। हर कवि की अपनी–अपनी विशिष्ट शैलियां होती हैं। अपनी प्रभावात्मक शैलियों के कारण दिनकर की अपनी अलग पहचान है। उनके काव्य में प्रश्न शैली, दृष्टान्त शैली, व्याख्यात्मक शैली, प्रबोधात्मक शैली, नाट्य शैली, सूक्ति शैली आदि विविध शैलियों का प्रयोग देखा जा सकता है।

'कुरुक्षेत्र' में प्रश्न–शैली का प्रयोग प्रचुर रूप में हुआ है। यहां एक उदाहरण प्रस्तुत है :

हठ पै दृढ़ देख सुयोधन को

मुझको व्रत से डिगजाना था क्या?

विष की जिस कीच में था मग्न

मुझे उसमें गिर जाना था क्या?

द्रोपदी के पराभव का बदला

कर देश का नाश चुकाना था क्या?

दृष्टान्त शैली :

सिन्धु देह धर 'त्राहि–त्राहि'

करता आ गिरा शरण में

चरणपूज दासता ग्रहण की

बन्धा मूढ़ बन्धन में।

व्याख्यात्मक शैली :

और भी थे भाव उनके हृदय में,

स्वार्थ के, नरता के, जलते शौर्य के

खींचकर जिसने उन्हें आगे किया,

हेतु उस आदेश का था और भी।

प्रबोधात्मक शैली :

चुराता न्याय जो, रण को बुलाता भी वही है,

युधिष्ठिर! स्वत्व की अन्वेषणा पातक नहीं है।

नरक उनके लिए, जो पाप को स्वीकारते हैं;

न उनके हेतु जो रण में उसे ललकारते हैं।

19.3.5 अलंकार–विधान

सौन्दर्य सबको आकर्षित करता है। संसार के सभी नर–नारी सुन्दर लगने के लिए नाना प्रकार के सौन्दर्य–प्रसाधनों का प्रयोग करते हैं। वैसे ही अपनी कविता–कामिनी को अधिकाधिक आकर्षक बनाने के लिए कवि भी विविध अलंकारों को प्रयुक्त करते हैं। दिनकर का काव्य भी परम्परित अलंकारों से सुशोभित है। इन अलंकारों में प्रमुख हैं–

छेका अनुप्रास और जब पविकाय पाण्डव भीम ने।

वृत्यानुप्रास वीर–वधू वसुधा विधवा बन रो रही है।
कर–कंकण को कर चूर ललाट से

उपमा उस हलाहल–सी कुटिल द्रोहग्नि का
जो कि जलती आ रही चिरकाल से
स्वार्थ–लोलुप सभ्यता के अग्रणी
नायकों के पेट में जठराग्नि–सा।
दीखता है स्वप्न अन्तःशून्य–सा।

उत्प्रेक्षा हिमकण सिक्त कुसुम–सम उज्ज्वल अंग–अंग झलमल था,
मानो, अभी–अभी जल से निकला उत्फुल्ल कमल था।

रूपक जाति–मन्दिर में जलाकर शूरता की आरती,
जा रहा हूँ विश्व से चढ़ युद्ध के ही यान पर।

उदाहरण यों ही, नरों में भी विकारों की शिखाएँ आग–सी
एक से मिल एक जलती प्रचण्डावेग से।

दृष्टान्त हिंसा का आघात तपस्या ने कब कहां सहा है,
देवों का दल सदा दानवों से हारता रहा है।

यमक किन्हीं मर्त्य नयनों की रसप्रतिमा, उर्वशी किसी की,
सखी उर्वशी–सी तुम भी लगती कुछ मदमाती हो।

उल्लेख बनी हलाहल वही वंश का,
लपटें लाख–भवन की
द्यूत–कपट शकुनी का, वन–
यातना पाण्डु–नन्दन की।

अपह्नुति रूधिर नहीं था, आग पिघल कर
बहती थी रग–रग में।

असंगति ज्यों–ज्यों साड़ी विवश द्रोपदी की खिंचती जाती थी,
त्यों–त्यों वह आवृत्त, दुराग्नि यह नग्न हुई जाती थी।

सन्देह	ईश जानें, देश का लज्जा विषय, तत्त्व है कोई कि केवल आवरण।
वीप्सा	धर्मराज, उसके कण–कण का अधिकारी जन–जन है। नोंच–नोंच खा रहा गृद्ध जो वक्ष किसी का चीर।
मानवीकरण	हर्ष का स्वर घूमता निस्तार–सा लड़खड़ाता मर रहा कुरुक्षेत्र में। उषा रोज रजनी के सिर चढ़ी हुई आती है।
अतिशयोक्ति	रक्त से सिंच कर समर की मेदिनी हो गई है लाल नीचे कोस–भर, और ऊपर रक्त की खर धार में तैरते हैं अंग रथ, गज, वाजि के।
स्वाभावोक्ति	शृंग चढ़ जीवन के आर–पार हेरते–से योगलीन लेटे थे पितामह गंभीर–से। देखा धर्मराज ने, विभा प्रसन्न फैल रही श्वेत शिरोरूह, शर–ग्रथित शरीर से।
अन्योक्ति	वट की विशालता के नीचे जो अनेक वृक्ष उनकी शिराएं तोड़ों, डालियां कतर दो।
विरोधाभास	छोड़ मेरे हाथ में शरीर निज प्राणहीन, व्योम में बजाता जय–दुन्दुभि–सा बार–बार और यह मृतक शरीर जो बचा है शेष, चुप–चुप, मानो पूछता है मुझ से पुकार।
प्रतीप	उगी कौन–सी विभा? इन्दु की किरणें लगी लजाने ज्योत्सना पर यह कौन अपर ज्योत्सना छाई जाती है?
विभावना	और बिना ही कहे समझ लेगा, आँखों–आँखों में मूक व्यथा की कसक, आँसुओं की निस्तब्ध गिरा में।

काव्य–गुणों की गणना भी प्रायः अलंकारों में ही कर ली जाती है। अतः दिनकर के काव्य में माधुर्य, ओज एवं प्रसाद गुणों के कुछ उदाहरण देखिए –

माधुर्य	चूमता हूँ दूब को, जल को, प्रसूनों, पल्लवों को बल्लरी को बांहें भर उर से लगाता हूँ,

बालकों–सा मैं तुम्हारे वक्ष में मुँह को छिपाकर
नींद की निस्तब्धता में डूब जाता हूँ।

ओज होगा ध्वंस कराल, काल विप्लव का खेल रचेगा,
प्रलय प्रकट होगा धरणी पर, हा–हा–कार मचेगा।

प्रसाद अब तो कहीं नहीं जीवन की
आहट भी आती है,
हवा दमे की मारी कुछ
चलकर थक जाती है।

19.3.6 छन्द–विधान

कविता छन्द में बंधकर ही अपना प्रभाव दिखाती है। दिनकर ने परम्परित छन्दों के अतिरिक्त कुछ नए छन्दों को भी अपने काव्य में प्रयुक्त किया है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का कथन है कि दिनकर के काव्य में छन्द घुमड़–घुमड़ कर रूप वर्णन का निमित्त बनाता है, भाषा मुग्ध सेविका की भांति इंगित पर दौड़ती है। कल्पना अनायास विगलित निर्झरिणी की भांति रूप और छन्द को व्यंजित करती रहती है।

दिनकार की कविता 'नेमत' से एक नया छन्द देखिए–

नया छन्द : कविता सबसे बड़ा तो नहीं
फिर भी अच्छा वरदान है।
मगर मालिक की अजब शान है।
जिसे भी यह वरदान मिलता है,
उसे जीवनभर पहाड़ ढोना पड़ता है।
एक नेमत के बदले
अनेक नेमतों से हाथ धोना पड़ता है।

कवित्त : करूँ आत्मघात तो कलंक और घोर होगा,
नगर को छोड़, अतएव, बन जाऊँगा
पशु–खग भी न देख पायें जहां, छिप किसी
कन्दरा में बैठ अश्रु खुलके बहाऊँगा;
जानता हूँ, पाप न धुलेगा बनवास से भी,
छिपा तो रहूँगा, दुःख कुछ तो भुलाऊँगा;
व्यंग्य से बिंधेगा वहां जर्जर हृदय तो नहीं,
वन में कहीं तो धर्मराज न कहाऊँगा।

गीति छन्द : क्षमाशील हो रिपु–समक्ष
तुम हुए विनत जितना ही,
दुष्ट कौरवों ने तुम को
कायर समझा उतनी ही।
अत्याचार सहन करने का
कुफल यही होता है,
पौरूष का आतंक मनुज
कोमल होकर खोता है।

अपनी प्रगति जांचिए

1. दिनकर के काव्य में कौनसा रस नहीं है?
   (क) श्रृंगार रस (ख) वीर रस
   (ग) हास्य रस (घ) करुण रस
2. 'कर–कंकरण को कर चूर ललाट से' में कौन सा अलंकार है?
   (क) उत्प्रेक्षा (ख) अनुप्रास
   (ग) विभावना (घ) उपमा
3. 'उषा रोज रजनी के सिर चढ़ी हुई आती है' में कौन सा अलंकार है?
   (क) रूपक (ख) अन्योक्ति
   (ग) विरोधाभास (घ) मानवीकरण
4. दिनकर के काव्य में कौन–से गुण की प्रधानता है?
   (क) प्रसाद (ख) ओज
   (ग) माधुर्य (घ) कोई नहीं

19.4 सारांश

दिनकर ने मुक्तक एवं प्रबन्ध दोनों की प्रकार के काव्य की अनेक रचनाओं का प्रणयन किया। इन रचनाओं में भाव पक्ष एवं कलापक्ष का सुन्दर सांमजस्य दिखाई पड़ता है। भाषा पर इनका पूर्ण अधिकार है। विषयानुकूल सटीक शब्द–चयन से अभिव्यक्ति प्रभावात्मक बन पड़ी है। वैसे तो इनके काव्य में लगभग सभी रसों का समावेश है, किन्तु वीर रस का चित्रण करने में इनकी लेखनी अधिक रमी है। बिम्ब, प्रतीक, लोकोक्ति एवं मुहावरों का मणिकांचन संयोग इनके काव्य में सहज ही देखा जा सकता है। विविध काव्य शैलियों के प्रयोग से इनके काव्य में अपेक्षित

रमणीयता समाहित हुई है। इनका अलंकार–विधान अनुपम एवं छन्द–विधान अद्वितीय है। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि इनके काव्य का शिल्प–विधान बहुत ही आकर्षक एवं प्रभावात्मक है।

19.5 मुख्य शब्दावली

प्रतिभा	=	बुद्धि
बहुमुखी	=	अनेक प्रकार की
आनन्दाप्लावित	=	प्रसन्नता से परिपूर्ण
ललाट	=	मस्तक
तिमिर–अंजन	=	अन्धकार रूपी काजल
निष्कलुष	=	निर्मल, पवित्र
अभिसिक्त	=	भिगोया हुआ, सिंचित
पादप	=	वृक्ष
मूलोच्छेद	=	जड़ से उखाड़ना
दामिनी	=	बिजली, विद्युत

19.6 अपनी प्रगति जांचिए के उत्तर

1. (ग) हास्य रस
2. (ख) अनुप्रास
3. (घ) मानवीकरण
4. (ख) ओज

19.7 अभ्यास के लिए प्रश्न

1. दिनकर के काव्य में मुख्यतः कौन–कौन से रसों का वर्णन है?
2. दिनकर ने प्रकृति को किस–किस रूप में देखा है?
3. काव्य में बिम्ब का क्या महत्त्व है?
4. दिनकर के काव्य मे किन–किन शैलियों का प्रयोग हुआ है?
5. काव्य में अलंकार–विधान से क्या तात्पर्य है?
6. दिनकर के काव्य में अलंकार–विधान किस कोटि का है?
7. दिनकर के छन्द–विधान को रेखांकित कीजिए।

19.8 आप ये भी पढ़ सकते हैं।

1.	डॉ0 रेणु व्यास,	दिनकर : सृजन और चिन्तन
2.	डॉ0 शंभुनाथ,	दिनकर : कुछ पुनर्विचार
3.	डॉ0 जयसिंह 'नीरद'	दिनकर के काव्य में परम्परा और आधुनिकता
4.	शिवसागर मिश्र	दिनकर : एक सहज पुरुष
5.	डॉ0 सावित्री सिन्हा	युगचारण दिनकर
6.	कामेश्वर शर्मा	दिग्भ्रमित राष्ट्रकवि
7.	डॉ0 सत्यकाम वर्मा	जनकवि दिनकर
8.	जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी	दिनकर : व्यक्तित्व एवं कृतित्व
9.	डॉ0 पी0 आदेश्वर राव	दिनकर : वैचारिक क्रांति के परिवेश में
10.	एस0 के0 पद्मावती	कवि दिनकर : व्यक्तित्व और कृतित्व
11.	डॉ0 छोटे लाल दीक्षित	दिनकर का रचना–संसार
12.	धर्मपाल सिंह	दिनकर का वीर काव्य
13.	निधि भार्गव	दिनकर–काव्य में क्रांतिमंत चेतना
14.	डॉ0 अश्विनी वशिष्ठ	दिनकर के काव्य में मानव–मूल्य
15.	डॉ0 सरला परमार	दिनकर की काव्यभाषा : शैलीवैज्ञानिक अध्ययन
16.	गोपालकृष्ण कौल	दिनकर सृष्टि और दृष्टि
17.	शिखर चन्द्र जैन	राष्ट्रकवि दिनकर एवं उनकी काव्य कला
18.	डॉ0 गोपाल राय सत्यकाम	दिनकर व्यक्तित्व और रचना के नए आयाम

इकाई 20 दिनकर की जीवन–दृष्टि

इकाई की रूपरेखा

20.0 परिचय

20.1 इकाई के उद्देश्य

20.2 जीवन–दृष्टि

- 20.2.1 मानवतावादी दृष्टिकोण
- 20.2.2 राष्ट्रीय चेतना
- 20.2.3 साम्यवादी चिंतन
- 20.2.4 शोषितों के प्रति संवेदना
- 20.2.5 लोक–कल्याण की भावना
- 20.2.6 राष्ट्रीय समस्याओं के प्रति जागरूक
- 20.2.7 सांस्कृतिक चेतना
- 20.2.8 मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा
- 20.2.9 प्रेम एवं सौन्दर्य की आराधना

20.3 सारांश

20.4 मुख्य शब्दावली

20.5 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर

20.6 अभ्यास हेतु प्रश्न

20.7 आप ये भी पढ़ सकते हैं

20.0 परिचय

रामधारी सिंह 'दिनकर' छायावादोत्तर हिन्दी काव्य के एक सशक्त हस्ताक्षर हैं। इनकी जीवन–दृष्टि बड़ी व्यापक है। यही कारण है कि इनकी विविध रचनाओं में अनेक प्रकार की भाव–भंगिमाएं देखने को मिलती हैं। किसी भी कवि का जीवन–दर्शन सदा एक जैसा स्थाई या अपरिवर्तनीय नहीं रहता। समय, स्थिति एवं परिवेश के अनुसार उसमें परिवर्तन आते रहते हैं। दिनकर की प्रारम्भिक एवं प्रौढ़ रचनाओं में इस अन्तर को स्पष्ट देखा जा सकता है। एक बीस वर्षीय अल्हड़ नवयुवक एवं साठे–पाठे वार्द्धक्य–जर्जर व्यक्ति की जीवन–दृष्टि में परिवर्तन आना स्वाभाविक है। यौवन में आग उगलने वाला कवि धीरे–धीरे जग–जीवन की यथार्थ स्थिति से परिचित हो जाता है और तदनुसार उसके काव्य के सोपान भी बदलने लगते हैं। दिनकर की जीवन दृष्टि या उन का काव्य भी इस सिद्धान्त का अपवाद नहीं है। राष्ट्रप्रेम, समानता का भाव, लोक–कल्याण, युग–चेतना युद्ध की समस्या आदि के प्रति दिनकर की दृष्टि बड़ी स्पष्ट एवं विश्वविदित है।

20.1 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई में आगे जानेंगे

- दिनकर की जीवन–दृष्टि में आए परिवर्तन
- मानवता के प्रति उनकी सोच
- उनका क्रांतिकारी स्वर
- उनकी सांस्कृतिक चेतना
- युद्ध की समस्या का समाधान
- उनकी प्रेम एवं सौन्दर्य सम्बन्धी भावना

20.2 दिनकर की जीवन–दृष्टि

20.2.1 मानवतावादी दृष्टिकोण

साहित्य में मानव–जीवन का विश्लेषण एवं विवेचन प्रतिपादित होता है। साहित्य में केवल मानव जीवन की यथार्थ स्थिति का आकलन ही नहीं रहता, अपितु मानव सुखी कैसे रह सकता है, इसका दिग्दर्शन भी साहित्यकार अपनी रचनाओं में अनुस्यूत करता है। यदि दिनकर के काव्य का आद्योपान्त अनुशीलन किया जाए तो उनकी अधिकांश रचनाओं में मानव–कल्याण की भावना परिलक्षित होगी।

'कुरुक्षेत्र' में धर्मराज युधिष्ठिर और भीष्म पितामह के संवादों में मानवता पर यथेष्ट प्रकाश डाला गया है। कुरुक्षेत्र के समरांगन में महाभारत का विध्वंशकारी महायुद्ध लड़ा गया। इस में जो नर–सहांर हुआ, वह मानवता के माथे पर सब से बड़ा कलंक था। इस युद्ध में मानवता को शर्मसार करने के कौन–कौन से हथकंडे नहीं अपनाए गए? युधिष्ठिर यह युद्ध जीतकर भी अपने आप को हारा हुआ महसूस कर रहा है। वह पश्चाताप की आग में जलता हुआ कहता है–

जानता कहीं जो परिणाम महाभारत का,
तन–बल छोड़ मैं मनोबल से लड़ता;
तप से, सहिष्णुता से, त्याग से सुयोधन को
जीत, नयी नींव इतिहास की मैं धरता।
और कहीं वज्र गलता न मेरी आह से जो,
मेरे तप से नहीं सुयोधन सुधरता;
तो भी हाय, रक्तपात नहीं करता मैं,
भाइयों के संग कहीं भीख मांग मरता।

महाभारत के युद्ध में मानवता की बड़ी नृशंस हत्या हुई। करोड़ों लोगों का खून बहा। माताएँ बेलाल एवं बालक बेहाल हो गए, अनेक ललनाओं का सुहाग उजड़ गया। चारों और मरघट की मुर्दनी छा गई, जिसे देखकर युधिष्ठिर भाव–विह्वल होकर कहने लगे–

रक्त से छाने हुए इस राज्य को
वज्र हो कैसे सकूँगा भोग मैं?
आदमी के खून में यह है सना
और है इसमें लहू अभिमन्यु का।

20.2.2 राष्ट्रीय चेतना

दिनकर एक राष्ट्रभक्त कवि थे और राष्ट्रीयता उनकी आत्मा का स्पन्दन था। राष्ट्र की गौरव–गरिमा जहां भी खंडित होती दिखलाई पड़ती, कवि की ओजपूर्ण लेखनी राष्ट्र के ठंडे रक्त का खौलाने का कार्य करने लगती। दिनकर की काव्य–चेतना राष्ट्रीयता से लबलबा रही है। दिनकर की राष्ट्रीयता संकीर्ण नहीं है, बल्कि विश्वमानवता के लिए भी प्रेरणा का सन्देश देने वाली है। राष्ट्रीयता के अमर गायक दिनकर के हृदय में परिवर्तनकारी क्रांति का उद्घोष सुनाई पड़ता है–

नाचो, अग्निखण्ड भर स्वर में,
फूँक–फूँक ज्वाला अम्बर में,
अनिल–कोष, द्रुम–दल, जल–थल में
अभय विश्व के उर–अन्तर में,
गिरे विभव का दर्प–चूर्ण हो
लगे आग इस आडम्बर में।

20.2.3 साम्यवादी चिन्तन

दिनकर मार्क्स की विचारधारा से बहुत प्रभावित थे। उनकी दृढ़ धारणा थी कि आर्थिक असमानता के कारण विश्व में अशांति एवं संघर्ष का बोलबाला है। शांति–स्थापना के लिए संसार के लोगों में समता की भावना जगाना आवश्यक है, अन्यथा सामर्थ्यवान सत्ता–सम्पन्न लोग निरीह निर्बल विवश सर्वहारा वर्ग का खून चूसते रहेंगे। भीष्म पितामह के माध्यम से दिनकर ने कुरुक्षेत्र में समता की वकालत इस प्रकार की है–

धर्मराज, यह भूमि किसी की
नहीं क्रीत है दासी,
हैं जन्मना समान परस्पर
इसके सभी निवासी।

भीष्म पितामह धर्मराज युधिष्ठिर को समझा रहे हैं कि जब तक विश्व में न्यायोचित अधिकारों की रक्षा नहीं होगी, इस संसार में शान्ति संभव नहीं। अनेक सत्ताधारी लोग अपनी भोग–लिप्सा के कारण विवश लोगों की लाचारी का अनुचित लाभ उठा रहे हैं, उनका शोषण कर रहे हैं। जब तक उनकी आधिपत्यवादी परम्परित प्रवृत्ति का परिशमन नहीं होगा, तब तक शांति का स्वप्न संजोना निरर्थक है–

जब तक मनुज–मनुज का यह
सुख–भाग नही सम होगा,

शमित न होगा कोलाहल,

संघर्ष नहीं कम होगा।

आज मनुष्य असमानता एवं द्वेषभाव के कारण दुःखी हैं। पहले सबके सब सुखसागर में गोते लगाते थे क्योंकि उनमें पारस्परिक संवेदना थी, एक दूसरे के सहयोगी थे। तब आज की तरह जीवन में होड़ा–होड़ी एवं साम्राज्य स्थापित करने की लालसा नहीं थी। सर्वत्र समाजवाद का मंत्र गूंजता था–

सब थे बद्ध समष्टि–सूत्र में

कोई छिन्न नहीं था,

किसी मनुज का सुख समाज के

सुख से भिन्न नहीं था।

20.2.4 शोषितों के प्रति संवेदना

दिनकर प्रगतिवादी काव्य के दौर के कवि थे। उस समय के कवियों की रचनाओं में सर्वत्र सर्वहारा वर्ग के लिए संवेदना का संवेग ठाठें मार रहा था। दिनकर की कविताओं में भी दलित, शोषित किसान, मजदूरों के प्रति सहानुभूति का प्रभावात्मक वर्णन हुआ है। पूंजीवादी निज़ाम को ध्वस्त करने के लिए वह क्रांति का मंत्र फूँकता है –

उठ भूषण की भाव रंगिणी लेनिन के दिल की चिंगारी,

युग मर्दित जीवन की ज्वाला, जाग–जाग री क्रांति कुमारी।

लाखों क्रौंच कराह रहे हैं, जाग आदि कवि की कल्याणी,

फूट–फूट तू कवि कंठों से बन व्यापक की युग की वाणी।

दिनकर ने दीन–हीन, शोषित दलितों की दारुण दशा को बड़े निकट से, खुली आँखों से देखा था। उसने देखा था कि मिल मालिकों के तो कुत्ते भी दूध और बिस्कुट खाते हैं तथा गरीबों के बच्चे दाने–दाने को तरसते हैं। कभी–कभी तो उन्हें भूखे पेट ही सो जाना पड़ता है। जमीदारों के खेतों में रात–दिन काम करने वाली मजदूर महिलाओं को तन ढाँपने के लिए वस्त्र तक नहीं मिलते उनकी ऐसी दयनीय एवं हृदयविदारक स्थिति को देखकर कवि के ओजस्वी स्वर फूट पड़ते हैं–

श्वानों को मिलता वस्त्र दूध, भूखे बच्चे अकुलाते हैं।

मां की हड्डी से चिपक ठिठुर जाड़ों की रात बिताते हैं।।

युवती की लज्जा वसन बेच, जब ब्याज चुकाए जाते हैं।

मालिक जब तेल फुलेलों पर पानी ज्यों द्रव्य बहाते हैं।।

पापी महलों का अहंकार देता मुझको तब आमंत्रण।

20.2.5 लोककल्याण की भावना

भारतीय संस्कृति का भव्य भवन लोक–कल्याण की भावना पर आधारित है। 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' इस का मूल मंत्र है। यद्यपि वैज्ञानिक विकास के बल पर मनुष्य ने आकाश–पाताल की थाह पा ली है, दुर्गम पर्वतों पर राह बना ली है। ब्रह्माण्ड के सारे रहस्य उसके सामने खुल गए हैं, प्रकृति नतमस्तक होकर उसे प्रणाम करती है, पर क्या यह

आशातीत वैज्ञानिक उन्नति मानव को मानव की तरह रहना सिखा पाई है। विनाशकारी वैज्ञानिक आविष्कार मानवता को नरक में धकेल रहे हैं। जो ज्ञान मानव–कल्याण का मार्ग प्रशस्त नहीं करता वह बुद्धि का छलावा है, छूंछा है। दिनकर को यह सब अभीष्ट नहीं था। वह तो विश्व–मानव के लिए ऐसी कामना करता है–

रसवती भू के मनुज का श्रेय,
यह नहीं विज्ञान कटु आग्नेय।
श्रेय उसका प्राण में बहती प्रणय की वायु,
मानवों के हेतु अर्पित मानवों की आयु।
श्रेय उसका आँसुओं की धार,
श्रेय उसका भग्न–वीणा की अधीर पुकार।
दिव्य भावों के जगत् में जागरण का गान,
मानवों का श्रेय आत्मा का किरण–अभियान।

जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है भारतीय संस्कृति लोककल्याण एवं मानवतावादी चिन्तन से परिप्लावित है। वस्तुतः यह विश्व–कल्याण की कामना करती है। दिनकर की ये पंक्तियां हमारे कथन की साक्षी हैं–

भारत नहीं स्थान का वाचक, गुण विशेष नर का है,
एक देश का नहीं, शील यह भू–मण्डल भर का है।
जहां कहीं एकता अखंडित जहां प्रेम का स्वर है,
देश–देश में वहां खड़ा भारत जीवित भास्वर है।

20.2.6 राष्ट्रीय समस्याओं के प्रति जागरूक

कोई भी राष्ट्र कभी समस्याओं से पूरी तरह मुक्त नहीं होता। दिनकर के समय भी भारत में अनेक समस्याएँ मुँह बाए खड़ी थी। राष्ट्र की स्वाधीनता, देश की गरीबी, समाज में ऊँच–नीच एवं जातिवाद की कुत्सित परम्पराएं दिनकर के हृदय को मथे जा रही थी। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद सारे संसार में वैमनस्य के बादल छाए हुए थे। भारत – चीन युद्ध के उपरान्त भारतीय राजनीति भी गरमा गई थी। हिन्दी–चीनी भाई–भाई का नारा अकारथ हो गया था। ऐसे परिवेश में कवि के अन्तस में इन समस्याओं से दो–दो हाथ करने के विचार उठना स्वाभाविक था।

दिनकर चहुँदिश छाई मुर्दनी को देखकर उद्वेलित हो उठे। वे जानते थे कि ऐसी परिस्थितियों में गीता का कर्मयोग ही कारगर सिद्ध हो सकता है। वे राष्ट्र के नवयुवकों को इसी कर्मवाद से प्रेरित होकर राष्ट्रीय संग्राम में कूदने का आह्वान करते हैं। कवि के स्वर में नवयुवकों के प्रति एक उत्प्रेरक उद्‌बोधन इस प्रकार उभरा है–

भुजाओं पर मही का भार फूलों–सा उठाए जा,
कम्पाए जा गगन को, इन्द्र का आसन हिलाए जा।।
जहां में एक ही है रोशनी, वह नाम तेरे की,
जमीं को एक तेरी आग का आधार है साथी।।

भारत में जातिवाद का जहर भी अपना दुर्दान्त प्रभाव दिखा रहा था। दिनकर ने 'रश्मिरथी' में कर्ण की वीरता के माध्यम से इस समस्या का निदान खोजने का प्रयास किया है। इस कृति की भूमिका में कवि ने लिखा है कि यह युग दलितों और उपेक्षितों के उद्धार का युग है। कर्ण–चरित के उद्धार की चिन्ता इसका प्रमाण है कि हमारे समाज में मानवीय गुणों की पहचान बदलने वाली है। कुल और जाति का अहंकार विदा हो रहा है। इस कटु यथार्थ को कवि ने इस प्रकार उजागर किया है –

जाति–जाति रटते, जिनकी पूँजी केवल पाषंड।

मैं क्या जानूँ जाति? जाति हैं ये मेरे भुजदण्ड।।

जैसे कबीर ने कहा था– 'जाति न पूछिए साध की, पूछ लीजिए ज्ञान।' वैसे ही दिनकर ने कर्ण को उसके चारित्रिक गुणों के कारण उच्चासन पर प्रतिष्ठापित किया है। व्यक्ति को जाति नहीं, उसके गुण महान् बनाते हैं।

मैं उनका आदर्श, किन्तु जो तनिक न घबराएंगे।

निज चरित्र–बल से समाज में पद विशिष्ट पाएंगे।।

यद्यपि दिनकर ने अपनी 'बापू' नामक कृति में गांधी जी के सिद्धान्तों का पुरजोर समर्थन किया, किन्तु चीन के हाथों मिली करारी हार के बाद उनका अहिंसा से विश्वास उठ गया। 'परशुराम की प्रतीक्षा' नामक काव्य में उनकी ओजस्वी वाणी फूट पड़ी–

रे रोक युधिष्ठिर को न यहां, जाने दे उनको स्वर्ग धीर।

पर फिरा हमें गांडीव गदा, लौटा दे अर्जुन भीम वीर।।

20.2.7 सांस्कृतिक चेतना

किसी भी कवि के काव्य में सांस्कृतिक चेतना का समाविष्ट होना सहज एवं स्वाभाविक है, क्योंकि हमारे रहने–सहने का ढंग, बोलचाल, भाषा, अनुष्ठान, पर्वोत्सव, जीवन–दर्शन हमारी संस्कृति के अभिन्नांग हैं। इन सब का प्रभाव हमारे जीवन पर पड़ता है, दिनकर पर भी पड़ा। अतः उनकी रचनाओं में हमारी संस्कृति का जीवन्त रूप देखा जा सकता है। अध्यात्म हमारी संस्कृति का मेरुदण्ड है। मानवीय–मूल्यों से यह सम्पुष्ट हुई है। 'कुरूक्षेत्र' के सातवें सर्ग में युधिष्ठिर को भारतीय संस्कृति के प्रति अनुरक्त करते हुए भीष्म पितामह उद्‌बोधित करते हैं –

लोभ, द्रोह, प्रतिशोध, वैर,

नरता के विघ्न अमित हैं?

तप, बलिदान, त्याग के संबल

भी न किन्तु, परिमित हैं।

भारतीय संस्कृति आत्मोत्थान पर बल देती है, शारीरिक शक्ति पर नहीं, क्योंकि निर्मल मन ही बलिष्ट तन पर शासन करता है। तन–मन में सामंजस्य की स्थिति जिस रूप हो, इसका संकेत देते हुए कवि कहता है–

और सिखाओं भोगवाद की यही रीति जन–जन को,

करें विलीन देह को मन में, नहीं देह में मन को।

20.2.8 मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा

जो बातें या जो भाव मानव–कल्याण की सिद्धि में सहायक हों, उन्हें मानवीय–मूल्यों की संज्ञा दी गई है। अतः सत्य, दया, धर्म, त्याग, परोपकार, दान आदि मानवीय–मूल्यों की श्रेणी में आते हैं। दिनकर ने 'कुरुक्षेत्र' में इन सब का पर्यवेक्षण किया है और कामना की है कि संसार के सब लोग परस्पर प्यार से रहें। वैज्ञानिक उन्नति नर–संहार के लिए नहीं, अपितु मानवता के घावों पर चन्दन का अनुलेप लगाने के लिए हो। हमारी संस्कृति 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' के स्तम्भों पर सुशोभित है, क्योंकि मानवीय–मूल्यों की भावभूमि पर उसका सर्जन हुआ है। मानव–मंगल हमारा मूलमंत्र है, यही हमारा ध्येय है। दिनकर ने यही तो कहा है–

श्रेय वह नर बुद्धि का शिव रूप आविष्कार,
ढो सके जिससे प्रकृति, सबके सुखों का भार।
मनुज के श्रम के अपव्यय की प्रथा रूक जाए,
सुख–समृद्धि विधान में नर के प्रकृति झुक जाए।

धर्म और कर्म मानव–कल्याण के सशक्त उपादान हैं। प्राचीन भारत में इन माननीय–मूल्यों की सर्वत्र स्वीकृति थी। इसलिए लोग परस्पर प्रेम से रहते थे, एक दूसरे के दुःख–सुख को बाँट लेते थे। कवि कामना करता है कि वह सुखद समय फिर से लौट आए–

नर नर का प्रेमी था, मानव मानव का विश्वासी,
अपरिग्रह का नियम, लोग थे कर्म–लीन संन्यासी।
बंधे धर्म के बंधन में सब लोग जिया करते थे,
एक दूसरे का दुख हँसकर बाँट लिया करते थे।

20.2.9 प्रेम एवं सौन्दर्य की आराधना

प्रेम एवं सौन्दर्य के प्रति आकर्षण मनुष्य की मूलभूत प्रवृत्ति है। डॉ0 ठाकुर मानते हैं कि दिनकर में आरम्भ से ही एक ओर तो उत्तेजना और आक्रोश भरी राष्ट्रीय एवं सामाजिक चेतना और दूसरी और 'सुन्दरता का आनन्द लेने की प्रवृत्ति', दोनों का सह–अस्तित्व है।

दिनकर ने इस तथ्य को स्वीकारते हुए 'चक्रवाल' की भूमिका में स्वयं लिखा है कि संस्कारों से मैं कला के सामाजिक पक्ष का प्रेमी अवश्य बन गया था, किन्तु मन मेरा भी चाहता था कि गर्जन–तर्जन से दूर रहूँ और केवल ऐसी कविताएँ लिखूँ जिनमें कोमलता और कल्पना का उभार हो। राष्ट्रीय और क्रांतिकारी होने का सुयश तो मुझे 'हुंकार' से ही मिला, किन्तु आत्मा मेरी अब भी 'रसवंती' में बसती है।

निश्चय ही 'रसवंती' में दिनकर की सौन्दर्यान्वेषी वृत्ति काव्यमयी हो जाती है, पर यह अन्धेरे में ध्येय सौन्दर्य का अन्वेषण नहीं, उजाले में ज्ञेय सौन्दर्य की आराधना है। उनकी कृति रसवंती से एक अनिंद्य सौन्दर्य की झलक देखिए–

लगी पृथ्वी आँखों को देवि ! सिक्त सरसी रूह–सी अम्लान,
कूल पर खड़ी हुई–सी निकल सिन्धु में करके सद्यस्नान।

ग्रहण कर उस दिन ही सुकामारि तुम्हारे स्वर्णांचल का छोर,

खोजने तृषितों का कल्याण चला मैं अमृत–देश की ओर।

रसवंती और द्वन्द्वगीत के अतिरिक्त उनकी रचना उर्वशी में भी प्रेम और सौन्दर्य की इयतता देखी जा सकती है। लेकिन यह एक पुरुष कवि द्वारा नारी को मात्र भोग्या या श्रृंगार की सामग्री समझकर नहीं लिखा गया। इसमें आध्यात्मिकता का भी स्पर्श है। इसमें प्रेम भावना और सहज काम–वासना के बीच द्वन्द्व चलता है। क्या काम से मनुष्य को मुक्ति मिलती है? ऐसे प्रश्न दिनकर की कविताओं में उठाए गए हैं।

सौन्दर्य के प्रति उनकी लालसा इस प्रकार व्यंजित हुई है –

मेरी भी यह चाह विलासिनी

सुन्दरता को सीस झुकाऊँ।

जिधर–जिधर मधुमयी बसी हो

उधर बसन्तानिल बन जाऊँ।

अपनी प्रगति जांचिए

1. दिनकर की किस कृति में प्रेम और सौन्दर्य का वर्णन है?

   (क) कुरुक्षेत्र (ख) परशुराम की प्रतीक्षा

   (ग) उर्वशी (घ) हुंकार

2. 'रे रोक युधिष्ठिर को न यहां, जाने दे उनको स्वर्ग धीर।' यहां युधिष्ठिर किसका प्रतीक है?

   (क) महात्मा गांधी (ख) सरदार पटेल

   (ग) शिवाजी (घ) महाराणा प्रताप

3. 'परशुराम की प्रतीक्षा' किस प्रकार की काव्य–रचना है?

   (क) वीररस प्रधान (ख) शान्त रस प्रधान

   (ग) श्रृंगार रस प्रधान (घ) करुण रस प्रधान

4. 'रश्मिरथी' में किस समस्या को उठाया गया है?

   (क) पूंजीवाद (ख) प्रपंचवाद

   (ग) भाईभतीजा वाद (घ) जातिवाद

20.3 सारांश

दिनकर की जीवन–दृष्टि को 'मंगलभवन अमंगलहारी' कहा जा सकता है। उनका शुभंकर काव्य और उदात्त जीवन–दृष्टि सर्वत्र सर्वथा वरेण्य हैं। मानवता के प्रति उनका अनुराग, राष्ट्र के प्रति उनकी स्पृहणीय चेतना, साम्यवादी स्थापना के लिए उनका दृढ़ संकल्प, शोषितों के प्रति संवेदना और शोषकों के प्रति आक्रोश सब कुछ

प्रशंसनीय है। उनका समूचा काव्य लोक–कल्याण की भावना से अनुप्राणित हैं, क्योंकि उनकी क्रांतिकारी कविताएँ दलित–शोषित वर्ग की मुक्ति का शंखनाद करती हैं। दिनकर भारतीय संस्कृति के अमर गायक हैं। उनकी काव्य–साधना में मानवीय–मूल्यों के अतिरिक्त प्रेम एवं सौन्दर्य की आराधना भी समाहित है। ऐसी सन्तुलित जीवन–दृष्टि प्रायः कम ही देखने में आई है।

20.4 मुख्य शब्दावली

अपरिवर्तनीय – जिसमें परिवर्तन न लाया जा सके।

वार्द्धक्य–जर्जर – बुढ़ापे का मारा हुआ

प्रतिपादित – वर्णित, विवेचित

परिलक्षित – दिखाई देना

समरांगन – युद्ध का मैदान, रणक्षेत्र

संकीर्ण – तुच्छ, संकुचित

परिप्लावित – परिपूर्ण

दुर्दान्त – अदम्य, भयंकर

अकारथ – व्यर्थ

सामंजस्य – समन्वय, तालमेल

शुभंकर – मंगलकारी

वसन्तानिल – बासन्ती पवन

20.5 अपनी प्रगति जांचिए के उत्तर

1. (ग) उर्वशी
2. (क) महात्मा गांधी
3. (क) वीर रस
4. (घ) जातिवाद

20.6 अभ्यास हेतु प्रश्न

1. दिनकर के समाजवादी दृष्टिकोण को दर्शाइए।
2. दिनकर के काव्य में राष्ट्रीयता का प्रतिपादन कीजिए।
3. दिनकर के काव्य में मानवतावादी चेतना का परिचय दीजिए।
4. दिनकर के काव्य में प्रेम और सौन्दर्य वर्णन पर प्रकाश डालिए।
5. दिनकर की सांस्कृतिक चेतना को रेखांकित कीजिए।
6. दिनकर के काव्य में शोषितों की स्थिति को स्पष्ट कीजिए।

20.7 आप से भी पढ़ सकते हैं।

1.	डॉ0 रेणु व्यास,	दिनकर : सृजन और चिन्तन
2.	डॉ0 शंभुनाथ,	दिनकर : कुछ पुनर्विचार
3.	डॉ0 जयसिंह 'नीरद'	दिनकर के काव्य में परम्परा और आधुनिकता
4.	शिवसागर मिश्र	दिनकर : एक सहज पुरुष
5.	डॉ0 सावित्री सिन्हा	युगचारण दिनकर
6.	कामेश्वर शर्मा	दिग्भ्रमित राष्ट्रकवि
7.	डॉ0 सत्यकाम वर्मा	जनकवि दिनकर
8.	जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी	दिनकर : व्यक्तित्व एवं कृतित्व
9.	डॉ0 पी0 आदेश्वरराव	दिनकर : वैचारिक क्रांति के परिवेश में
10.	डॉ0 छोटे लाल दीक्षित	दिनकर का रचना–संसार
11.	धर्मपाल सिंह	दिनकर का वीर काव्य
12.	निधि भार्गव	दिनकर–काव्य में क्रांतिमंत चेतना
13.	डॉ0 अश्विनी वशिष्ठ	दिनकर के काव्य में मानव–मूल्य
14.	डॉ0 सरला परमार	दिनकर की काव्यभाषा : शैलीवैज्ञानिक अध्ययन
15.	गोपालकृष्ण कौल	दिनकर सृष्टि और दृष्टि

इकाई 21 कुरुक्षेत्र के षष्ठ सर्ग का प्रतिपाद्य

इकाई की रूपरेखा

21.0 परिचय

21.1 इकाई के उद्देश्य

21.2 षष्ठ सर्ग का प्रतिपाद्य

21.2.1 विश्व–मंगल कामना

21.2.2 वैज्ञानिक आविष्कारों की विभीषिका

21.2.3 बुद्धि का उद्देश्यहीन विकास

21.2.4 मनुष्य की अतृप्त लालसा

21.2.5 मानवता का तिरस्कार

21.2.6 मानव जीवन का लक्ष्य

21.2.7 मानव, मानव में सौहार्द एवं समानता

21.3 सारांश

21.4 मुख्य शब्दावली

21.5 अपनी प्रगति जांचिए के उत्तर

21.6 अभ्यास हेतु प्रश्न

21.7 आप ये भी पढ़ सकते हैं।

21.0 परिचय

रामधारी सिंह 'दिनकर' हिन्दी काव्य के देदीप्यमान नक्षत्र हैं। उनका विविध आयामी काव्य हिन्दी–साहित्य की अमूल्य निधि है। 'कुरुक्षेत्र' उनका प्रबन्धात्मक काव्य है, जो महाभारत के महासमर से जुड़ी कुरुक्षेत्र में घटित एक विध्वंशकारी घटना पर आधारित है। यह युद्ध अन्याय के विरुद्ध लड़ा गया था, पर इस युद्ध का प्रणेता कौन था, यह एक विचारणीय प्रश्न है, जो कुरुक्षेत्र का प्रतिपाद्य विषय है।

इस समस्या पर प्रकाश डालते हुए कुरुक्षेत्र की भूमिका (निवेदन) में स्वयं दिनकर ने लिखा है, "युद्ध निन्दित और क्रूर कर्म है, किन्तु उसका दायित्व किस पर होना चाहिए? उस पर, जो अनीतियों का जाल बिछाकर प्रतिकार को आमंत्रण देता है? या उस पर जो जाल को छिन्न–भिन्न कर देने के लिए आतुर है? पाण्डवों को निर्वासित करके एक प्रकार की शांति की रचना तो दुर्योधन ने की थी; तो क्या युधिष्ठिर महाराज को इस शांति को भंग नहीं करना चाहिए था?"

अस्तु, कुरुक्षेत्र के छठे सर्ग का महाभारत की कथा से कोई सामंजस्य नहीं बैठता, क्योंकि इस सर्ग में वर्तमान विश्व का परिदृश्य प्रस्तुत किया है, जिसमें वैज्ञानिक आविष्कारों के दुर्दान्त परिणामों का मार्काखेज आकलन

जुटाया गया है। विश्व बारूद के ढ़ेर पर बैठा है। कवि इस बात से चिंतित है कि कहीं इस ज्वालामुखी में विस्फोट न हो जाए। इस आशंका से अभिभूत कवि भगवान से प्रार्थना करता है कि हे ईश्वर इस विश्व के लोगों का जीवन मंगलमय बना दो।

21.1 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई में आप जानेंगे

- विश्व–मानव के लिए मंगलकामना
- वैज्ञानिक उन्नति वरदान या अभिशाप
- मनुष्य की बौद्धिक उन्नति के दुष्परिणाम
- सामाजिक चेतना एवं जन–जागरण का शंखनाद
- बुद्धि और हृदय का समन्वय
- मानव–प्रेम का प्रवाह

21.2.1 विश्व–मंगलकामना

द्वितीय विश्व युद्ध के बम्बों के धमाकों ने समस्त संसार को आकुल–व्याकुल कर दिया। दिनकर जी के मन–मस्तिष्क भी इससे उद्वेलित हुए और उनकी अनुभूति ने अभिव्यक्ति का रूप ले लिया, जिसे कुरुक्षेत्र के षष्ठ सर्ग के रूप में देखा जा सकता है। दिनकर को सर्वत्र युद्ध की ज्वाला जलती दिखाई दी। उसने देखा कि मानवता तिरोहित हो रही है और दानवता के पो बारह हैं तो उनका हृदय विगलित हो उठा। उन्होंने भगवान से करुणा की याचना करते हुए पूछा कि मर्माहत पृथ्वी का उपचार कब होगा–

धर्म का दीपक, दया का दीप,
कब जलेगा, कब जलेगा, विश्व में भगवान?
कब सुकोमल ज्योति से अभिसिक्त
हो, सरस होंगे जली–सूखी रसा के प्राण?

उन्होंने आगे कहा कि इस धरती पर ऋषि–मुनियों और साधु–सन्तों ने अपनी अमृत–वाणी की खूब वर्षा की, किन्तु इस संसार के लोगों पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वे फिर भी भोग–विलास के पंक में डूबे रहे। अपहरण, परपीड़न और द्वेष जैसे कुत्सित कुकर्मों में लीन होकर वे एक दूसरे की जड़ें खोदते रहे।

21.2.2 वैज्ञानिक आविष्कारों की विभीषिका

आज के युग में विज्ञान ने आशातीत उन्नति की है। जिसके बल पर मनुष्य ने प्रकृति पर विजय प्राप्त करके नए शिखरों को छू लिया है। आज उसने वायु, अग्नि, इन्द्र, जल आदि सभी देवताओं को अपने बस में कर लिया है। प्रकृति के सभी उपादान आज उसके इशारों पर नाचते हैं। पृथ्वी, सागर और आकाश सब उसकी मुट्ठी में हैं। पर अफसोस इस बात का है कि अपनी बुद्धि से सर्वत्र अपना आधिपत्य जमा कर भी वह मनुष्य के दिल को नहीं जीत पाया। दिनकर ने इस कटु यथार्थ को इस प्रकार उद्घाटित किया है–

किन्तु, है बढ़ता गया मस्तिष्क ही निःशेष,

छूटकर पीछे गया है रह हृदय का देश;

नर मनाता नित्य नूतन बुद्धि का त्योहार,

प्राण में करते दुखी हो देवता चीत्कार।

विज्ञान ने मनुष्य के लिए असंख्य सुविधाएं तो उत्पन्न की, किन्तु उसका सुख छीन लिया। नदी का सुखद संगीत, उसकी कल–कल की मधुर ध्वनि, प्रकृति में खिले फूलों के चटक रंगों की सुगन्ध, हृदय को आह्लादित करने वाले सभी साधन विज्ञान के आविष्कारों का शिकार हो गए। मनुष्य की बुद्धि का प्रसार यहीं नहीं रूका, वह तो मंगल एवं शनि जैसे ग्रहों पर भी अपनी विजय–पताका फहराना चाहती है। विज्ञान के आविष्कारों ने मनुष्य की बुद्धि इतनी भ्रष्ट कर दी है कि वह गीदड़ एवं कुत्तों से भी बदतर हो गया है।

21.2.3 बुद्धि का उद्देश्यहीन विकास

'अति सर्वत्र वर्जयेत्' वाली उक्ति अक्षरशः सही है। अतः विज्ञान एवं बुद्धि का विवेकहीन अपरिमित विकास विश्वमानव के लिए घातक है। मनुष्य की बुद्धि में बारूद भरी होने के कारण उसकी सोच नर–पिशाचों जैसी हो गई है। ऐसी स्थिति में वह नर–संहार पर अट्टाहास करता है। उसका यह दुष्कृत्य मानवता का सरासर तिरस्कार है। दिनकर ने उसकी इस दुष्प्रवृत्ति को इस प्रकार लांछित किया है–

यह मनुज, जो ज्ञान का आगार है!

यह मनुज, जो सृष्टि का शृंगार !

नाम सुन भूलो नहीं, सोचो–विचारो कृत्य,

यह मनुज संहार–सेवी वासना का भृत्य।

छद्म इसकी कल्पना, पाषण्ड इसका ज्ञान,

यह मनुष्य मनुष्यता का घोरतम अपमान।

वह सोना किस काम का, जो कानों को तोड़े? तात्पर्य यह है कि धरती, आकाश और पाताल की थाह लेने वाले वे वैज्ञानिक आविष्कार अकारथ हैं, बेकार हैं, जो मानव के लिए कल्याणकारी न होकर विध्वंशक हैं। जो आविष्कार लोगों के मन में द्वेष, वैमनस्य और ईर्ष्या का विष भरकर उन्हें आपस में लड़वाएँ उनसे तो भगवान बचाए। 'बाज आए ऐसी मुहम्बत से उठा लो पानदान अपना' कहकर उनसे छुट्टी पा लेनी चाहिए।

21.2.4 मनुष्य की अतृप्त लालसा

दिनकर ने 'कुरुक्षेत्र' के छठे सर्ग में यह दिखने का सफल प्रयास किया है कि मनुष्य की अतृप्त लालसाओं के कारण ही विज्ञान के विनाशकारी आविष्कार हुए है। विख्व के मानव–मानव में और देश–देश में प्रतिद्वंद्विता के कारण ही परमाणु बम्बों का आविष्कार हुआ। वे एक–दसरे को खत्म करके सर्वस्व पर अपना आधिपत्य जमाना चाहते हैं। दिनकर के अनुसार यह मानवोचित नहीं है। यह मानव की कुत्सित बुद्धि का दुष्परिणाम ही है कि मानव तेजी से विध्वंश के रास्ते पर आगे बढ़ रहा है। यह किसी भी दृष्टि से मानवता के लिए अभीष्ट नहीं है–

रसवती भू के मनुज का श्रेय,

यह नहीं विज्ञान, विद्या–बुद्धि यह आग्नेय;

विश्व–दाहक, मृत्यु–वाहक, सृष्टि का संताप,

भ्रान्त पथ पर अन्ध बढ़ते ज्ञान का अभिशाप।

भ्रमित प्रज्ञा का कुतुक यह इन्द्रजाल विचित्र,

श्रेय मानव के ना आविष्कार ये अपवित्र।

मनुष्य की अतृप्त लालसाओं का उल्लेख किसी शायर ने कितना सटीक किया है–

हजारों ख्वाइसें ऐसी कि हर ख्वाइस पे दम निकले।

बहुत निकले मेरे अरमां, मगर फिर भी तो कम निकले।।

21.2.5 मानवता का तिरस्कार

इतिहास इस बात का साक्षी है कि जब–जब मनुष्य के आत्म–ओज पर बुद्धि की गुलकारियां छाई हैं तो विश्व में सर्वत्र त्राहि–त्राहि का आर्तनाद सुनाई पड़ा है। विनाशकारी अस्त्र–शस्त्रों के आविष्कार की अन्धी होड़ में निरत मनुष्य ने मानवता को ताक पर रख दिया है। पाप–पुण्य, न्याय–अन्याय, नीति–अनीति की अर्गला को लाँघ कर मनुष्य ने नर–संहार का बीड़ा उठा लिया है। अति–बौद्धिकता के कारण वह कर्त्तव्यविमूढ़ हो गया है। उसे इस बात का ज्ञान ही नहीं रहा कि उसके लिए क्या श्रेय है और क्या प्रेय तथा हेय है। बस, वह तो गतानुगति अन्धों की दौड़ में सम्मिलित हो गया। दिनकर ने यही तो कहा है –

किन्तु, नर–प्रज्ञा सदा गतिशालिनी, उद्दाम

ले नहीं सकती कहीं रूक एक पल विश्राम।

यह परीक्षित भूमि, यह पोथी पठित, प्राचीन

सोचने को दे उसे अब बात कौन नवीन?

यह लघुग्रह भूमिमण्डल, व्योम यह संकीर्ण,

चाहिए नर को नया कुछ और जग विस्तीर्ण।

दिनकर जी बताना चाहते हैं कि विज्ञान के आविष्कार वस्तुतः बन्दर के हाथ में तलवार की तरह हैं, जिसे उसका उपयोग करना ही नहीं आता। यदि मनुष्य को अपने भले–बुरे का ज्ञान ही नहीं तो वह वैज्ञानिक आविष्कारों का सदुपयोग नहीं कर सकता। इसलिए बुद्धिग्रस्त विवेकहीन मानव को सचेत करते हुए दिनकर जी ने कहा है –

सावधान, मनुष्य ! यदि विज्ञान है तलवार,

तो इसे दे फेंक, तज कर मोह, स्मृति के पार।

हो चुका है सिद्ध, है तू शिशु अभी नादान;

फूल–कांटों की तुझे कुछ भी नहीं पहचान।

खेल सकता तू नहीं ले हाथ में तलवार;

काट लेगा अंग, तीखी है बड़ी यह धार।

21.2.6 मानव जीवन का लक्ष्य

दिनकर जी 'कुरुक्षेत्र' के छठे सर्ग के माध्यम से संसार को बतान ा चाहते हैं कि मनुष्यों के लिए विज्ञान के आग बरसाने वाले आविष्कार वरेण्य नहीं हैं। उन्हें तो प्रेम की वह धारा चाहिए जिसका आचमन करके वे एक प्राण–द्विगात हो जाएं। उनके मन में एक दूसरे से आगे निकलने की भावना न हो बल्कि सब को साथ लेकर आगे बढ़ने के पवित्र एवं उदात्त भाव जागृत हों। सब के मन में सौहार्द के भाव संचरित हों। चहुँदिश संवेदना का सागर उमड़े और प्रेम की गंगा बहे, दिनकर जी यही तो चाहते हैं –

श्रेय वह विज्ञान का वरदान,

हो सुलभ सबको सहज जिसका रूचिर अवदान।

श्रेय वह नर–बुद्धि का शिवरूप आविष्कार,

ढो सके जिससे सब के सुखों का भार।

मनुज के श्रम के अपव्यय की प्रथा रुक जाए,

सुख–समृद्धि–विधान में नर के प्रकृति झुक जाए।

21.2.7 मानव–मानव में सौहार्द एवं समानता

दिनकर साम्यवादी थे। उनकी कृति 'कुरुक्षेत्र' में उनकी यह प्रवृत्ति पदे–पदे प्रतिपादित है। इसके छठे सर्ग के उपसंहार में उन्होंने कहा है कि जब मनुष्य, मनुष्य में समानता का भाव जागृत हो जाएगा, तो स्नेह–सिंचित यह धरा स्वर्ग के समान हो जाएगी। पारस्परिक विश्वास से परिपुष्ट होकर मनुष्य विश्व का नव–निर्माण करने में जुट जाएगा। लोग धर्म के मार्ग पर चलकर अपने जीवन को सफल बनाएंगे।

दिनकर जी उस स्वर्णिक समय का बेताबी से इन्तजार कर रहे हैं। वे उत्कंठापूर्वक भगवान से पूछते हैं –

साम्य की वह रश्मि स्निग्ध, उदार,

कब खिलेगी, कब खिलेगी विश्व में भगवान?

कब सुकोमल ज्योति से अभिसिक्त

हो, सरस होंगे जली–सूखी रसा के प्राण?

दिनकर जी का दृढ़ विश्वास है कि समानता और स्नेह की प्रेम–रज्जू में बन्ध कर ही मनुष्य अपना जीवन आनन्दपूर्वक जी सकेंगे।

अपनी प्रगति जांचिए

1. दिनकर के 'कुरुक्षेत्र' में कौन सा सर्ग क्षेपक कहा जा सकता है?

   (क) दूसरा सर्ग (ख) चौथा सर्ग

   (ग) छठा सर्ग (घ) सातवां सर्ग

2. निम्नलिखित में कौन सा कथन सत्य है?

   (क) दिनकर ने महाभारत की कथा कहने के लिए कुरुक्षेत्र की रचना की।

   (ख) दिनकर ने दूसरे विश्वयुद्ध से अभिभूत होकर कुरुक्षेत्र की रचना की।

   (ग) दिनकर ने गांधीवाद से प्रभावित होकर कुरुक्षेत्र की रचना की।

   (घ) दिनकर ने मानव–प्रेम दर्शाने के लिए 'कुरुक्षेत्र' की रचना की।

3. मनुष्य अपनी बुद्धि के बल पर किस ग्रह के प्राणियों को ललकार रहा है?

   (क) चन्द्रलोक (ख) सूर्य ग्रह

   (ग) पृथ्वी लोक (घ) मंगल ग्रह

4. 'फूल–कांटो की तुझे कुछ भी नहीं पहचान।'

   इस पंक्ति में 'फूल–कांटों' का प्रयोग किस के रूप में हुआ है?

   (क) धन–दौलत (ख) अच्छाई–बुराई

   (ग) ज्ञान–विज्ञान (घ) हर्ष–उल्लास

21.3 सारांश

'कुरुक्षेत्र' के छठे सर्ग में दिनकर जी ने महाभारत की मूल कथा से हट कर समसामयिक युद्ध और शान्ति की स्थिति पर मनोयोग से मनन किया है। द्वितीय विश्व युद्ध की विनाशकारी लीला को देखकर दिनकर का हृदय द्रवीभूत हो उठा। मानवता पर कुठारघात होते हुए देखकर उन्होंने वैज्ञानिक उन्नति से हुए आविष्कारों के दुष्परिणामों को उजागर करने की ठान ली। इस सर्ग में वैज्ञानिक उन्नति के बल पर प्राप्त हुई मनुष्य की उपलब्धियों का विस्तारपूर्वक परिचय दिया गया है। मनुष्य अपनी बुद्धि के बल पर भूलोक, द्युलोक, समुद्र एवं प्रकृति के सभी रहस्यों को जान चुका है। परन्तु वह इस आशातीत उन्नति से ही सन्तुष्ट नहीं हैं। वह तो मंगल एवं शनि जैसे ग्रहों पर भी धावा बोलने के लिए कटिबद्ध है। मानवता के लिए, उसकी यह प्रवृत्ति निन्दनीय एवं अवांछित है। यदि मनुष्य अपनी बुद्धि के अहंकार को भुलाकर, समानता के भाव को सहेजकर प्रेमपूर्वक इस धरती पर रहे तभी यहां मानवता के फूल खिल सकते हैं। कवि ऐसा सुन्दर समय देखने के लिए उत्कंठित है।

21.4 मुख्य शब्दावली

विचारणीय – विचार करने योग्य

प्रणेता – रचने वाला, बनाने वाला

दुर्दान्त	–	भयंकर
निर्वासित	–	देश से निकाले हुए
आकुल–व्याकुल	–	दुखी, बेचैन
कुत्सित	–	घृणित, बुरी
आह्लादित	–	आनन्दित, प्रसन्न
परपीड़न	–	दूसरों को पीड़ा पहुँचाना
अपरिमित	–	अथाह, असीम
गुलकारियां	–	करिश्मा, कसीदाकारी

21.5 अपनी प्रगति जांचिए के उत्तर

1. (ग) छठा सर्ग
2. (ख) दिनकर ने दूसरे विश्वयुद्ध से अभिभूत होकर कुरुक्षेत्र की रचना की
3. (घ) मंगल ग्रह
4. (ख) अच्छाई–बुराई

21.6 अभ्यास हेतु प्रश्न

1. क्या युद्ध निन्दित कार्य है, यदि हां तो क्यों?
2. युद्ध का दायित्व किस पर होना चाहिए?
3. वैज्ञानिक आविष्कार मानवता के लिए खतरा क्यों हैं?
4. मनुष्य की अतृप्त लालसाएं विनाशकारी क्यों हैं?
5. लोगों में सुख–शांति की बयार कैसे बह सकती है?

21.7 आप ये भी पढ़ सकते हैं।

1.	डॉ0 रेणु व्यास,	दिनकर : सृजन और चिन्तन
2.	डॉ0 शंभुनाथ,	दिनकर : कुछ पुनर्विचार
3.	डॉ0 जयसिंह 'नीरद'	दिनकर के काव्य में परम्परा और आधुनिकता
4.	शिवसागर मिश्र	दिनकर : एक सहज पुरुष
5.	डॉ0 सावित्री सिन्हा	युगचारण दिनकर
6.	कामेश्वर शर्मा	दिग्भ्रमित राष्ट्रकवि
7.	डॉ0 सत्यकाम वर्मा	जनकवि दिनकर
8.	जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी	दिनकर : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

9.	डॉ0 पी0 आदेश्वरराव	दिनकर : वैचारिक क्रांति के परिवेश में
10.	डॉ0 छोटे लाल दीक्षित	दिनकर का रचना–संसार
11.	धर्मपाल सिंह	दिनकर का वीर काव्य
12.	निधि भार्गव	दिनकर–काव्य में क्रांतिमंत चेतना
13.	डॉ0 अश्विनी वशिष्ठ	दिनकर के काव्य में मानव–मूल्य
14.	डॉ0 सरला परमार	दिनकर की काव्यभाषा : शैलीवैज्ञानिक अध्ययन
15.	गोपालकृष्ण कौल	दिनकर सृष्टि और दृष्टि